है । इसीलिये जैसे तीन कोठे पहले लिखे थे वैसे ही अनंत की सहनानी के लिये दूसरे तीन कोठे लिखे हैं । ऐसे होनेपर प्रथम परिवर्तन हुआ । इसलिये इतना प्रथम पंक्ति में लिखा है।

अब दूसरी पंक्ति का अर्थ दिखाते हैं – पूर्वोक्त अनुक्रम होने के पश्चात् निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करे, तब एक बार अगृहीत ग्रहण करता है । इसलिये प्रथम कोठे में दो हंसपद और एक शून्य लिखा । पुनश्च निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करके एक बार अगृहीत ग्रहण करे, सो उसी क्रम से अनंत बार अगृहीत ग्रहण करे, इसलिये पहले कोठे जैसा दूसरा कोठा लिखा है ।

पुनश्च उसके पश्चात् निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करके एक बार गृहीत ग्रहण करे, इसलिये तीसरे कोठे में दो हंसपद और एक बार एक का अंक लिखा है । सो मिश्र ग्रहण आदि पूर्वोक्त सर्व अनुक्रम सहित एक-एक बार गृहीत ग्रहण होता है, सो ऐसे गृहीत ग्रहण भी अनंत बार होता है । इसलिये जैसे पहले तीन कोठे लिखे थे वैसे ही दूसरे तीन कोठे लिखे । ऐसा होनेपर दूसरा परिवर्तन हुआ ।

अब तीसरी पंक्ति का अर्थ दिखाते हैं – पूर्वोक्त क्रम होने के पश्चात् निरंतर अनंत बार मिश्र का ग्रहण करके एक बार गृहीत का ग्रहण करे, इसलिये प्रथम कोठे में दो हंसपद और एक बार एक का अंक लिखा है । सो अनंत-अनंत बार मिश्र ग्रहण कर करके एक-एक बार गृहीत ग्रहण करके अनंत बार गृहीत ग्रहण होता है। इसलिये पहले कोठे के समान दूसरा कोठा लिखा । पुनश्च अनंत बार मिश्र का ग्रहण करके एक बार अगृहीत का ग्रहण करता है । इसलिये तीसरे कोठे में दो हंसपद और एक शून्य लिखा है । सो जैसे मिश्र ग्रहण आदि अनुक्रम से एक बार अगृहीत का ग्रहण हुआ वैसे ही एक एक बार करके अनंत बार अगृहीत का ग्रहण होता है । इसलिये पहले तीन कोठे थे, वैसे ही दूसरे तीन कोठे लिखे हैं, ऐसा होनेपर तीसरा परिवर्तन हुआ ।

आगे चौथी पंक्ति का अर्थ दिखाते हैं – पूर्वोक्त क्रम होने के पश्चात् निरंतर अनंत बार गृहीत का ग्रहण करके एक बार मिश्र का ग्रहण करे, इसलिये प्रथम कोठे में दो बार एक अंक और एक हंसपद लिखा है । सो अनंत अनंत बार गृहीत का ग्रहण कर करके एक-एक बार मिश्र का ग्रहण करके अनंत बार मिश्र का ग्रहण

होता है । इसलिये प्रथम कोठे के समान दूसरा कोठा लिखा है । पुनश्च उसके पश्चात् अनंत बार गृहीत का ग्रहण करके एक बार अगृहीत का ग्रहण करे, इसलिये तीसरे कोठे में दो बार एक का अंक और शून्य लिखा है । पुनश्च चतुर्थ परिवर्तन के आदि से जिस अनुक्रम से यह एक बार अगृहीत ग्रहण हुआ, उसी अनुक्रम से अनंत बार अगृहीत ग्रहण होता है, इसलिये पहले तीन कोठे किये थे, वैसे ही आगे अनंत बार की सहनानी के लिये दूसरे तीन कोठे किये हैं । ऐसा होनेपर चतुर्थ परिवर्तन हुआ । पुनश्च उस चतुर्थ परिवर्तन के अनंतर समय में विवक्षित नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन के पहले समय में जो पुद्गल जिस स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि भावों सहित ग्रहण किये थे, वे ही पुद्गल उसी स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि भावों सहित शुद्ध गृहीतरूप ग्रहण करता है । सो यह सब मिला हुआ सम्पूर्ण नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन जानना ।

आगे **कर्मपुद्गलपरिवर्तन** कहते हैं – किसी जीव ने एक समय में आठ प्रकार के कर्मरूप जो पुद्गल ग्रहण किये, वे एक समय अधिक आवलीप्रमाण आबाधाकाल जाने के पश्चात् द्वितीयादि समयों में निर्जरारूप किये । पश्चात् जैसा अनुक्रम आदि से लेकर अंत तक नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन में कहा, वैसा ही अनुक्रम सर्व चारों परिवर्तन संबंधी इस कर्मद्रव्यपरिवर्तन में जानना ।

विशेष इतना – वहां नोकर्मसंबंधी पुद्गल थे, यहां कर्मसंबंधी पुद्गल जानने। अनुक्रम में कोई अंतर नहीं है । पश्चात् पहले समय में जैसे पुद्गल ग्रहे थे, वे ही पुद्गल उसी भाव सहित चतुर्थ परिवर्तन के अनंतर समय में ग्रहण होते हैं, सो यह सर्व मिला हुआ सम्पूर्ण कर्मपरिवर्तन जानना । इस द्रव्यपरिवर्तन को पुद्गलपरिवर्तन भी कहते हैं । सो नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन का और कर्मपुद्गलपरिवर्तन का काल समान है । पुनश्च यहां इतना जानना ह्न पहले जो क्रम कहा, वहां जैसे पहले अनंत बार अगृहीत का ग्रहण कहा, वहां बीच बीच में गृहीत ग्रहण और मिश्र ग्रहण भी होता है, परंतु अनुक्रम में तो पहली बार, दूसरी बार आदि जो अगृहीत ग्रहण हो, वही गिनने में आता है । तथा कालप्रमाण में गृहीत, मिश्र ग्रहण के समयों सहित सर्व काल गिनने में आता है । जिन समयों में गृहीत का ग्रहण है, वे समय गृहीत ग्रहण के काल में गिनने में आते हैं । जिन समयों में मिश्र का ग्रहण होता है, वे समय मिश्र ग्रहण के काल में गिनने में आते हैं । जिन समयों में अगृहीत ग्रहण होता है, वे समय अगृहीत ग्रहण काल में गिनने में आते हैं । सो यह उदाहरण कहा

है, ऐसे ही सर्वत्र जानना । क्रम में तो जैसा अनुक्रम कहा है, वैसा हो तभी गिनने में आता है । और उस अनुक्रम के बीच में कोई अन्यरूप प्रवर्ते, वह अनुक्रम में गिनने में नहीं आता । और जिन समयों में अन्यरूप भी प्रवर्तन हो उन समयोंरूप जो काल, उसे परिवर्तन के काल में गिनने में आता है । ऐसे ही क्षेत्रादि परिवर्तन में जानना ।

*(**विशेषार्थ** – विवक्षित परिवर्तन में जिस क्रम की बात हो उसी क्रम से जब प्रवर्तन हो, तभी उसे गिनना, बीच में अक्रमरूप से प्रवर्तन तो होता है परंतु उसे क्रम में नहीं गिनना परंतु क्रमरूप या अक्रमरूप प्रवर्तन में जो काल व्यतीत हो जाय उस सम्पूर्ण काल को परिवर्तन के काल में गिनना ।)*

जैसे, क्षेत्रपरिवर्तन में किसी जीव ने जघन्य अवगाहना पाकर क्षेत्रपरिवर्तन प्रारम्भ किया, पश्चात् कितनेक काल अनुक्रम रहित अवगाहना पाकर पश्चात् अनुक्रमरूप अवगाहना को प्राप्त हुआ । वहां क्षेत्रपरिवर्तन के अनुक्रम में तो पहले जघन्य अवगाहना पायी थी और पश्चात् दूसरी बार अनुक्रमरूप अवगाहना पायी, उसे गिनने में आता है । तथा क्षेत्रपरिवर्तन के काल में बीच में अनुक्रम रहित अवगाहना पाने के कालसहित सर्व काल गिनने में आता है । ऐसे ही सब में जान लेना ।

अब यहां द्रव्यपरिवर्तन में काल का प्रमाण कहते हैं । वहां अगृहीत ग्रहण का काल अनंत है; तथापि यह सब से अल्प है । क्योंकि जिन पुद्गलों में से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों के संस्कार नष्ट हुये हैं वे पुद्गल बहुत बार ग्रहण में नहीं आते। इसीलिये विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के मध्य गृहीत पुद्गलों का ही बहुत बार ग्रहण होता है । वही कहा है –

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।

जो पुद्गल कर्मरूप परिणत थे और जिनकी स्थिति थोड़ी थी और निर्जरा होनेपर कर्मअवस्था से रहित हुये हैं और जीव के प्रदेशों से एकक्षेत्रावगाहीपनेरूप से रहते हैं और संस्थान–आकार जिनका कहा न जाय और विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के पहले समय में जिस स्वरूप से ग्रहण में आये थे उससे रहित हो, ऐसे पुद्गल जीव द्वारा अधिकांशपने से (बहुलता से) समयप्रबद्धों में ग्रहण किये जाते हैं । ऐसा नियम नहीं

है कि ऐसे ही पुद्गलों का ग्रहण करे, परंतु बहुत बार ऐसे ही पुद्गलों का ग्रहण होता है, क्योंकि ये पुद्गल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के संस्कार से युक्त हैं ।

पुनश्च अगृहीत ग्रहण के काल से मिश्र ग्रहण का काल अनंतगुणा है । पुनश्च उस मिश्र ग्रहण के काल से गृहीत ग्रहण का जघन्य काल अनंतगुणा है । उससे सम्पूर्ण पुद्गलपरिवर्तन का जघन्य काल कुछ अधिक है । जघन्य गृहीत ग्रहण काल को अनंत का भाग देकर जो प्रमाण आये, उतना जघन्य गृहीत ग्रहण काल में मिलानेपर, पुद्गलपरिवर्तन का जघन्य काल होता है । उससे गृहीत ग्रहण का उत्कृष्ट काल अनंतगुणा है । उससे सम्पूर्ण पुद्गलपरिवर्तन का उत्कृष्ट काल कुछ अधिक है । उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण के काल को अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आये उतना उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण काल में मिलानेपर, पुद्गलपरिवर्तन का उत्कृष्ट काल होता है । यहां अगृहीत ग्रहण काल और मिश्र ग्रहण काल में जघन्य उत्कृष्टपना नहीं है । क्योंकि परम्परा सिद्धांत में उनके जघन्य उत्कृष्टपने के उपदेश का अभाव है ।

यहां प्रासंगिक (उक्तं च) गाथा कहते हैं -

अगहिदमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च ।
मिस्सं गहिदमगहिदं गहिदं मिस्सं अगहिदं च ।।

पहला - अगृहीत, मिश्र, गृहीतरूप; दूसरा - मिश्र, अगृहीत, गृहीतरूप; तीसरा मिश्र, गृहीत, अगृहीतरूप; चौथा - गृहीत, मिश्र, अगृहीतरूप परिवर्तन होनेपर द्रव्यपरिवर्तन होता है । सो विशदरूप से पहले कहा ही है ।

उक्तं च (आर्या छंद) -

सर्वेऽपि पुद्गलाः खल्वेकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन ।
ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः पुद्गलपरिवर्तसंसारे ।।

एक जीव पुद्गलपरिवर्तनरूप संसार में यथायोग्य सर्व पुद्गल बारम्बार अनंत बार ग्रहण करके छोडता है ।

आगे **क्षेत्रपरिवर्तन** कहते हैं - वह क्षेत्रपरिवर्तन दो प्रकार का है - एक स्वक्षेत्रपरिवर्तन, एक परक्षेत्रपरिवर्तन ।

वहां **स्वक्षेत्रपरिवर्तन** कहते हैं - कोई जीव सूक्ष्म निगोद की जघन्य अवगाहना

को धारण करके उत्पन्न हुआ, श्वास के अठारहवें भागप्रमाण अपनी आयु को भोगकर मरा, पुनश्च उससे एक प्रदेश अधिक अवगाहना को धारण कर, पश्चात् दो प्रदेश अधिक अवगाहना को धारण कर, ऐसे अनुक्रम से एक-एक प्रदेश बढ़ते बढ़ते महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना तक संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना के भेदों को वही जीव प्राप्त होता है । अवगाहना के जितने भेद हैं, उन सब को एक जीव अनुक्रम से जितने काल में धारण करता है, उतना सब काल मिलकर समुदायरूप से स्वक्षेत्रपरिवर्तन जानना।

अब **परक्षेत्रपरिवर्तन** कहते हैं - सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त जघन्य अवगाहनारूप शरीर का धारक, वह लोकाकाश के मध्य में जो आकाश के आठ प्रदेश हैं उनको अपने शरीर की अवगाहना के मध्यवर्ती आठ प्रदेश करके, अवशेष उनके निकटवर्ती अन्य प्रदेशों को रोक कर उत्पन्न हुआ, श्वास के अठारहवें भागमात्र क्षुद्रभव काल तक जीकर मरा । पुनश्च वही जीव उसी अवगाहना को धारण कर, उसी क्षेत्र में दूसरी बार उत्पन्न हुआ, इसतरह जघन्य अवगाहना के प्रदेश घनांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, उतनी बार वैसे ही उत्पन्न हुआ, पश्चात् उसके निकटवर्ती आकाश के एक प्रदेश को रोककर उत्पन्न हुआ, ऐसे अनुक्रम से एक-एक प्रदेश से सर्व लोकाकाश के प्रदेशों को अपना जन्मक्षेत्र करता है, यह सर्व परक्षेत्रपरिवर्तन है।

उक्तं च (कहा ही है) -

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः ।
अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ।।

क्षेत्रसंसार में भ्रमण करनेवाले जीव द्वारा जिसको अपने शरीर की अवगाहना द्वारा स्पर्श न किया हो ऐसा सर्व जगत्श्रेणी के घनप्रमाण लोक में कोई प्रदेश नहीं है । तथा जिसको बहुत बार अंगीकार न किया हो ऐसा कोई अवगाहना का भेद नहीं है ।

आगे **कालपरिवर्तन** को कहते हैं ।

कोई जीव उत्सर्पिणी काल के पहले समय में जन्मा, अपनी आयु को पूर्ण करके मरा । फिर दूसरी *(अन्य)* उत्सर्पिणी के दूसरे समय में जन्मा, अपनी आयु को पूर्ण करके मरा । पुनश्च तीसरी *(अन्य किसी)* उत्सर्पिणी के तीसरे समय में उत्पन्न हुआ, वैसे ही मरा । इसतरह दस कोडाकोडि सागरप्रमाण उत्सर्पिणी काल के जितने समय

हैं, उनको पूर्ण करता है । पश्चात् इसी अनुक्रम से दस कोडाकोडिप्रमाण अवसर्पिणी काल के जितने समय हैं उनको पूर्ण करता है । उसके पश्चात् जैसे जन्म की अपेक्षा अनुक्रम कहा, वैसे ही मरण की अपेक्षा अनुक्रम जानना । पहले समय में मरा, दूसरे समय में मरा, ऐसे कल्पकाल के समयों को पूर्ण करता है । यह सर्व मिला हुआ कालपरिवर्तन जानना ।

*(**विशेषार्थ** – जीव उत्सर्पिणी के प्रथम समय में जन्मेगा उसके बाद उत्सर्पिणी अवसर्पिणी मिलाकर बीस कोडाकोडि प्रमाण कल्पकाल बीतनेपर, दूसरे कल्पकाल के दूसरे समय में यदि जन्म नहीं लेता तो वह कल्पकाल चला गया, उसके पश्चात् हो सकता है कि कितने ही कल्पकाल चले जायेंगे परंतु दूसरे समय में जन्म नहीं होगा, आगे पीछे होगा । उसे क्रम में नहीं गिनना परंतु काल जो बीत रहा है उसे गिनना। क्रमभंग होकर आगे पीछे समयमात्र का भी अंतर पड़े तो दुबारा एक कल्पकाल और चला जायेगा । इसतरह क्रम से एक एक समय में जन्म होने के पश्चात् क्रम से एक एक समय में मरण होना चाहिये । जीव किस क्षेत्र में जन्मता है, कौनसी गति में या कितनी अवगाहनावाला है या कितनी आयुवाला है इससे कोई मतलब नहीं है क्रम से एक समय आगे बढ़ने के लिये बीच में अनंत काल चला जाय।)*

उक्तं च (कहा ही है) –

उत्सर्पिण्यवसर्पिणिसमयावलिकासु निरवशेषासु ।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ।।

कालसंसार में भ्रमण करते हुये जीव ने उत्सर्पिणी अवसर्पिणीरूप कल्पकाल के समस्त समयों की पंक्ति में क्रम से बहुत बार जन्म लिया है और मरण किया है।

आगे **भवपरिवर्तन** कहते हैं –

कोई जीव नरकगति में दस हजार वर्ष की जघन्य आयु धारण करके उत्पन्न हुआ, पश्चात् मरकर संसार में भ्रमण कर वहां ही जघन्य दस हजार वर्ष की आयु को धारण कर जन्मा, ऐसे दस हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार तो जघन्य आयु को ही धारण कर करके जन्मा और मरा । पश्चात् दस हजार वर्ष और एक समय की आयु सहित जन्मा, पश्चात् दस हजार वर्ष और दो समय की आयु सहित जन्मा, ऐसे एक-एक समय से बढ़ते हुये अनुक्रम से उत्कृष्ट आयुमात्र तैंतीस सागर

पूर्ण करके पश्चात् तिर्यंचगति में अंतर्मुहूर्तमात्र जघन्य आयु सहित जन्मा । सो पूर्ववत् अंतर्मुहूर्त के जितने समय हो उतनी बार तो उस अंतर्मुहूर्तप्रमाण ही आयु को धारण कर करके जन्मे । पश्चात् एक समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयु को धारण करके जन्मे, पश्चात् दो समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयु को धारण करके जन्मे, ऐसे एक-एक समय अनुक्रम से बढ़ते बढ़ते उत्कृष्ट आयु के तीन पल्य पूर्ण करता है । पुनश्च मनुष्यगति में तिर्यंचगति के समान अंतर्मुहूर्त से लेकर तीन पल्य पूर्ण करता है । पुनश्च देवगति में नरकगति के समान दस हजार वर्ष से लेकर इकतीस सागर पूर्ण करता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव अनुदिश, अनुत्तर विमानों में उत्पन्न नहीं होता, ऊपर के (नौवें) ग्रैवेयक तक ही उपजता है, इसलिये इकतीस सागर ही कहे । ऐसे भ्रमण करके दुबारा नरक में दस हजार वर्ष प्रमाण जघन्य आयु को धारण कर जन्मे, तब यह सम्पूर्ण भवपरिवर्तन होता है ।

*(**विशेषार्थ** – एक एक गति संबंधी अनुक्रम से एक एक समय से बढ़ते हुये भव धारण करने के पश्चात् ही दूसरी गति संबंधी भव गिनना शुरु करना चाहिये। एक नरक भव के बाद दूसरा नरक भव तुरंत नहीं हो सकता दोनों के बीच में मनुष्य या तिर्यंच के भव होंगे । हो सकता है जिस गतिसंबंधी भव गिन रहे हो उससे अन्य ही तीन गति में चला जाय या एकेन्द्रिय में जाकर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन काल तक वहीं पर भ्रमण करे । यदि इस काल की कल्पना भी करने लग जाते हैं, तो इस संसार का भय जरूर लगता है ।)*

उक्तं च (कहा ही है) –

नरकजघन्यायुष्यादुपरिमग्रैवेयकावसानेषु ।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ।।

मिथ्यात्व के आश्रित जीव ने नरक की जघन्य आयु से लेकर उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत आयु सहित संसार की स्थिति बहुत बार भोगी है ।

*(**विशेषार्थ** – सभी ग्रैवेयकों में मिथ्यात्व सहित जानेवाले जीव द्रव्यलिंगी ही होना आवश्यक है । उसमें भी ऊपर के तीन उत्तम संहननवाले जीव ही ग्रैवेयकों में जा सकते हैं । सो चतुर्थकाल के या विदेहक्षेत्र के आर्यखण्ड के जीव ही द्रव्यलिंगी होकर वहां जायेंगे । हम सोच सकते हैं कि वहां बार-बार एक एक समय की बढ़ती*

हुयी आयु के साथ जन्मना कितना दुर्लभ होगा और बीच बीच में कितना बड़ा काल जाता होगा ।)

आगे **भावपरिवर्तन** कहते हैं - योगस्थान, अनुभागबंधअध्यवसायस्थान, कषायाध्यवसायस्थान, स्थितिस्थान इन चारों के परिवर्तन से भावपरिवर्तन होता है । सो प्रथम इनका स्वरूप कहते हैं -

प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध के कारणभूत ऐसे प्रदेश परिस्पंद लक्षण योग *(आत्मप्रदेशों के परिस्पंदनरूप योग)* उनके जो जघन्यादि स्थान *(जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक के स्थान)* वे योगस्थान हैं । तथा जिन कषाययुक्त परिणामों से कर्मों का अनुभागबंध होता है उनके जघन्यादि स्थान, वे अनुभागबंधअध्यवसायस्थान हैं । पुनश्च जिन कषाय परिणामों से स्थितिबंध होता है उनके जघन्यादि स्थान, उन्हें यहां कषायअध्यवसायस्थान कहे हैं या इन्हीं को स्थितिबंधअध्यवसायस्थान भी कहते हैं । तथा बंधनेरूप कर्मों की जो स्थिति, उनके जघन्यादिक स्थान, उन्हें स्थितिस्थान कहते हैं । इनका विशेष स्वरूप आगे कहेंगे, सो जानना ।

पुनश्च यहां एक-एक स्थितिभेद के बंध के कारणभूत अपने योग्य असंख्यातलोकप्रमाण स्थितिबंधअध्यवसायस्थान पाये जाते हैं । पुनश्च एक एक स्थितिबंधअध्यवसायस्थान में यथायोग्य असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधअध्यवसायस्थान पाये जाते हैं । पुनश्च एक एक अनुभागबंधअध्यवसायस्थान में जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र योगस्थान पाये जाते हैं ।

अब इनके परिवर्तन का अनुक्रम ज्ञानावरण कर्म के उदाहरण द्वारा कहते हैं - कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव अपने योग्य ज्ञानावरण कर्म की जघन्य स्थिति अंतःकोडाकोडि सागर प्रमाण बांधता है क्योंकि इस जीव के इससे कम स्थितिबंध नहीं होता, इसलिये इस जीव के लिये यही जघन्य स्थितिस्थान है ।

*(**विशेषार्थ** - जैसे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि के स्थितिस्थान कहे वैसे ही असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय आदि एकेन्द्रिय तक के जीवों के अपने-अपने योग्य स्थितिबंध के स्थान जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक होते हैं । इसका विस्तारपूर्वक वर्णन पं. टोडरमलजी ने आगे कर्मकाण्ड में किया हुआ है । अन्य भी स्थितिबंधअध्यवसायस्थान, अनुभागबंध-अध्यवसायस्थान, योगस्थान इनका वर्णन कर्मकाण्ड में ही किया हुआ है ।)*

कोडि के ऊपर और कोडाकोडि के नीचे जो हो, उसे अंतःकोडाकोडि कहते हैं । वहां उस जघन्य स्थितिबंध करनेवाले जीव के उस जघन्य स्थितिबंध के योग्य असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थान पाये जाते हैं, वे परिणामों की अपेक्षा अनंतभागादिक षट्स्थानों से युक्त हैं ।

*(**विशेषार्थ** – विवक्षित कोई भी स्थिति का बंध होता है, उतनी ही स्थिति अन्य अन्य असंख्यात परिणामों द्वारा बंध सकती है । उन परिणामों को संक्लेश और विशुद्धि के स्थान अर्थात् कषायों के स्थान या स्थितिबंधअध्यवसायस्थान कहते हैं । उस विवक्षित स्थिति से एक समय अधिक स्थिति का बंध होता है, उसके अपने योग्य कषायाध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं । इन प्रत्येक समय के कारणभूत कषायाध्यावसाय के जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक के स्थानों में असंख्यातलोक बार षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त स्थान पाये जाते हैं ।)*

पुनश्च उनमें भी जघन्य कषायअध्यवसायस्थान को निमित्तभूत अनुभागबंधअध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण पाये जाते हैं ।

*(**विशेषार्थ** – इसी तरह एक-एक कषायअध्यवसायस्थान के अपने-अपने योग्य असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधअध्यवसायस्थान पाये जाते हैं। इसलिये विवक्षित स्थिति का बंध करनेवाले किसी विवक्षित संक्लेश या विशुद्धि के साथ असंख्यातलोकप्रमाण जुदे जुदे अनुभागबंधअध्यवसायस्थान होते हैं । इनमें भी प्रत्येक में असंख्यातलोक बार षट्स्थानपतित स्थान पाये जाते हैं ।)*

सो पूर्वोक्त किसी जीव के अंतःकोडाकोडि सागर प्रमाण जघन्य ही तो स्थितिस्थान है और उसके जघन्य ही कषायअध्यवसायस्थान है और जघन्य ही अनुभागबंधअध्यवसाय-स्थान है । और उस जीव के जैसा योग्य हो, वैसा जघन्य ही योगस्थान पाया जाता है, *(एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों के अपने-अपने योग्य जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान पाये जाते हैं ।)* वहां भावपरिवर्तन का प्रारंभ हुआ । उसी जीव के स्थितिस्थान, कषायाध्यवसायस्थान, अनुभागबंधअध्यवसायस्थान ये तीनों जघन्य ही रहे और योगस्थान दूसरा हुआ जो जघन्यस्थान से असंख्यातभागवृद्धिवाला है । पश्चात् स्थितिस्थानादिक तीनों तो जघन्य ही रहे और योगस्थान तीसरा हुआ । *(जब जब अनुक्रम से आगे-आगे वाला योगस्थान हो उसीको*

गिनना बीच में अन्य योगों सहित काल तो गिनना मगर योग नहीं गिनना ।) इस अनुक्रम से योग के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धिरूप चतुःस्थानपतित वृद्धियुक्त श्रेणी के *(जगत्‌श्रेणी के)* असंख्यातवें भागमात्र योगस्थान होते हैं । *(सभी योगस्थानों को क्रम से प्राप्त होकर)* उसके पश्चात् स्थितिस्थान और कषायअध्यवसायस्थान तो जघन्य ही रहे और अनुभागबंधअध्यवसायस्थान का दूसरा स्थान हुआ तथा योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार से जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक सब हुये ।

पश्चात् स्थितिस्थान और कषायाध्यवसायस्थान तो जघन्य ही रहे, और अनुभागबंधअध्यवसाय का तीसरा स्थान हुआ । वहां भी योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार हुये। इसी क्रम से अपने योग्य असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधअध्यवसायस्थान हुये ।

उसके पश्चात् स्थितिस्थान तो जघन्य ही रहा और कषायाध्यवसायस्थान दूसरा हुआ वहां पूर्वोक्त प्रकार से योगस्थानों से युक्त *(जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक पलटते हुये योगस्थानों सहित)* अनुभागअध्यवसायस्थान जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक हुये ।

उसके पश्चात् स्थितिस्थान तो जघन्य ही रहा और कषायाध्यवसायस्थान तीसरा हुआ वहां भी पूर्वोक्त प्रकार से योगस्थानों से युक्त क्रम से अनुभागबंधअध्यवसायस्थान हुये । इसी क्रम से अपने योग्य कषायाध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हुये ।

पुनश्च जिसप्रकार अंतःकोडाकोडि सागरप्रमाण इस जघन्य स्थितिस्थान में अनुक्रम कहा है, उसीप्रकार जघन्य से एक समय अधिक ऐसे दूसरे स्थितिस्थान में अपने योग्य योगस्थान और अनुभागबंधअध्यवसायस्थान इनके परिवर्तन के साथ पूर्वोक्त प्रकार क्रम से अपने योग्य सभी कषायाध्यवसायस्थान हुये ।

पुनश्च इसीप्रकार जघन्य स्थिति से दो समय अधिक तीसरे स्थितिस्थान में हुये। ऐसे एक-एक समय से बढ़ते हुये स्थितिस्थानों के अनुक्रम से तीस कोडाकोडि सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति तक जानना ।

पुनश्च जैसे यह ज्ञानावरण कर्म की अपेक्षा कथन किया वैसे ही कर्मों की सभी मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियों में परिवर्तन का अनुक्रम जानना । ऐसे यह सब मिलकर एक भावपरिवर्तन जानना । यहां जघन्य स्थिति आदि में सभी कषायाध्यवसायस्थान आदि का पलटना नहीं होता अपितु जघन्य स्थिति आदि में विवक्षित स्थिति में जितने

कषायाध्यवसायस्थान आदि (अनुभागअध्यवसायस्थान तथा योगस्थान) संभव हो उन्हीं का पलटना होता है, ऐसा जानना ।

उक्तं च (कहा ही है) – आर्या छंद

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि ।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे ।। १ ।।

लोक में भावसंसार में भ्रमण करनेवाले जीव ने प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बंध के योग्य जो योगों के, कषायों के, स्थिति के स्थान हैं वे सभी भोगे हैं । यहां परिवर्तन के अनुक्रम में जघन्य स्थितिस्थान संबंधी स्थितिबंधअध्यवसायस्थान, अनुभाग-बंधअध्यवसायस्थान, योगस्थान जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक होते हैं, उनको आदि में रखकर सर्वोत्कृष्ट स्थिति तक अपने अपने संबंधी जघन्य से उत्कृष्ट तक स्थितिबंधअध्यव-सायादिक को स्थापित करके यथासंभव जैसे गुणस्थान प्ररूपणा में प्रमाद के भेदों के निमित्त अक्षसंचार द्वारा परिवर्तन का विधान कहा था, वैसे यहां भी अक्षसंचार द्वारा परिवर्तन का विधान जानना ।

*(**विशेषार्थ** – विवक्षित एक कर्मप्रकृति के जघन्य स्थितिबंधस्थान संबंधी इन भावों के पलटने से जितने भंग होते हैं वे इसप्रकार हैं – जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान × असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधअध्यवसायस्थान × असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थान । स्थिति के एक-एक समय बढ़ानेपर उनके अपने योग्य इन स्थानों को आपस में गुणा करनेपर उतने स्थान होंगे । इसप्रकार जघन्य से उत्कृष्ट तक के स्थिति संबंधी सभी स्थितिस्थानों के सभी भंगों को जोड़नेपर एक कर्मप्रकृति के भंग हुये । इसीप्रकार सभी प्रकृतियों के सभी स्थितिस्थानों पर घटित करके सभी को मिलानेपर जो भंगों की संख्या उत्पन्न होगी उसमें किसी जीव ने प्रथम भंग से लेकर अंतिम भंग तक जब जब अनुक्रम से इन भावों को प्राप्त किया तब तो उस भंग को गिनना, बीच में क्रमभंग से अन्य भावों को प्राप्त करके अनंतकाल भी घूमे तो उन भावों को गिनती में नहीं लेना परंतु उस काल को अवश्य गिनना ।*

ये पांचों ही परिवर्तन मिथ्यात्व अवस्था में जीव कैसे कैसे अनंतकाल से भ्रमण करता आया है उस काल को बताता हैं । इस काल की अनंतता की कल्पना करनेपर जीव भय से कांप उठता है । संसार से भयभीत होगा तो ही उससे छूटने का विचार

Bg Ord H$m Am`Jm & gå`Šëd hmZna Bg Ord H$ ggma H$m {H$Zmam ZO{XH$ AmVm h & H$mB Cgr ^d _| {gÕ AdñWm àH$Q H$aJm `m H$mB {_Ï`mËd _| {JaH$a A{YH$ g A{YH$ AY nXJbn[adVZ H$mb VH$ ^_U HaH AV _| {gÕAdñWm àH$Q H$aJm hr & Cgg A{YH$ CgH$m ggma _| ^QH$Zm Zht hm gH$Vm &

BZ n[adVZm| H$m H$mb XIZ H$ nhb h_ Cg ÑîQmV Ûmam g_PJ & Og KSr _| ~Sr Ama NmQr gB hmVr h& ~Sr gB Om KÊQm| H$m ~VmVr h Ama NmQr gB Om {_ZQm| H$m ~VmVr h, AÝ` ^r NmQr gB Om gH$ÊS H$m ~VmVr h& KSr _| {H$gr gB H$ ~mah g bH$a X~mam ~mah na AmZna EH$ n[adVZ hmVm h& Cg_| gH$ÊS H$s gB H$m EH$ n[adVZ H$aZ _| gmR gH$ÊS AWmV EH$ {_ZQ bJVm h, {_ZQdmbr gB H$m EH$ n[adVZ H$aZ H$ {b` gmR {_ZQ AWmV EH$ KÊQm bJVm h CVZ H$mb _| gH$ÊSdmbr gB H$ gmR n[adVZ hmV h VWm Om gB KÊQm| H$m ~VmVr h CgH$ EH$ n[adVZ H$ {b` ~mah KÊQ bJV h CZ ~mah KÊQm| _| {_ZQdmbr gB H$ ~rg n[adVZ hmV h {Og_| gmV gm ~rg {_ZQ bJV h Ama gH$ÊSdmbr gB H$ gmV gm ~rg n[adVZ hmV h {Og_| VVmbrg hOma Xm gm gH$ÊS bJV h& `hm Ðì`n[adVZm{X _| H$_ g Ðì`n[adVZ H$m H$mb AZV hmZna ^r g~ g Aën h & AZH$_ g AmJ AmJ H$ n[adVZm| H$m H$mb AZVJUm h & Bg{b` EH$ ^mdn[adVZ _| AZV ^dn[adVZ, CZg AZVJU H$mbn[adVZ, CZg AZV-AZV JU jÌn[adVZ Ama CZg AZV-AZV JU Ðì`n[adVZ hmV h &) Eg ` nMn[adVZ H$h &

A~ BZH$m H$mb H$hV h -

g~ g Aën EH$ nXJbn[adVZ H$m H$mb h, dh AZV h & Cgg AZVJUm jÌn[adVZ H$m H$mb h & Cgg AZVJUm H$mbn[adVZ H$m H$mb h & Cgg AZVJUm ^dn[adVZ H$m H$mb h & Cgg AZVJUm ^mdn[adVZ H$m H$mb h & BgrH$maU EH$ Ord H$ AZm{X g bH$a AVrV H$mb _| ^mdn[adVZ WmS h`, d ^r AZV h` & CZg AZVJU ^dn[adVZ h` & CZg AZVJU H$mbn[adVZ h` & CZg AZVJU jÌn[adVZ h` & VWm CZg AZVJU Ðì`n[adVZ h` Egm OmZZm &

{OgàH$ma ñdJm{X _| {XZ-am{Ì H$m A^md h, dhm _Zî` jÌ H$s Anjm g df Am{X H$m à_mU H$aV h dg Ohm {ZJmXm{X Ordm| _| n[adVZ H$m AZH$_

नहीं पाया जाता, वहां अन्य जीवों की अपेक्षा से परिवर्तन का काल ग्रहण करते हैं ।

उक्तं च (कहा ही है) – आर्या छंद

पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः ।
मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति ।।

जिनमत द्वारा दिखाया हुआ तो मुक्ति का मार्ग, उसका श्रद्धान न करनेवाला प्राणी–जीव नाना प्रकार के दुःखों से आकुलित जो पांच प्रकार का संसार, उसमें भ्रमण करता है ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से भव्यमार्गणा प्ररूपणा नामक सोलहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१६।।

सत्रहवां अधिकार : सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

ज्ञान उदधि शशि कुंथु जिन, बंदौ अमितविकास ।
कुंथ्वादिक कीए सुखी जनम मरण करि नाश ॥

आगे सम्यक्त्वमार्गणा को कहते हैं –

छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥५६१॥

षट्पञ्चनवविधानामर्थानां जिनवरोपदिष्टानाम् ।
आज्ञाया अधिगमेन च श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम् ॥५६१॥

टीका – द्रव्यभेद से छह प्रकार, अस्तिकायभेद से पांच प्रकार, पदार्थभेद से नौ प्रकार के, ऐसे सर्वज्ञदेव ने कहे हुये जीवादिक पदार्थ (वस्तु) उनका श्रद्धान–रुचि–यथावत् प्रतीति, वह सम्यक्त्व जानना । सो सर्वज्ञदेव ने जैसे कहा है वैसा ही है ऐसे आप्तवचन से सामान्य निर्णयरूप है लक्षण जिसका ऐसी जो आज्ञा, उसके द्वारा प्रमाण–नय आदि के विशेष जाने बिना ही श्रद्धान होता है । अथवा प्रत्यक्ष–परोक्ष प्रमाण तथा द्रव्यार्थिक–पर्यायार्थिक नय तथा नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव निक्षेप तथा व्याकरणादि द्वारा साधित निरुक्ति तथा निर्देश, स्वामित्व आदि अनुयोग इत्यादि द्वारा विशेष निर्णयरूप है लक्षण जिसका ऐसा जो अधिगम, उसके द्वारा श्रद्धान होता है।

उक्तं च (कहा ही है) –

सरागवीतरागात्म–विषयत्वाद् द्विधा स्मृतम् ।
प्रशमादिगुणं पूर्वं परं चात्मविशुद्धिजम् ॥१॥

सम्यक्त्व दो प्रकार का है एक सराग, एक वीतराग । वहां उपशम, संवेग, आस्तिक्य आदि गुणरूप रागसहित श्रद्धान हो, वह सरागसम्यक्त्व है । तथा केवल चैतन्यमात्र आत्मस्वरूप की विशुद्धता मात्र वीतरागसम्यक्त्व है ।

उक्तं च (कहा ही है) –

आप्त व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमस्तित्वसंयुतम् ।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे ।।

सम्यग्दृष्टि जीव के सर्वज्ञदेव में, व्रत में, शास्त्र में, तत्त्व में ये ऐसे ही हैं इसप्रकार के अस्तित्वभाव से युक्त चित्त होता है, वह सम्यक्त्वसहित जीव में आस्तिक्य गुण है। ऐसा अस्तित्ववादियों द्वारा कहा है अथवा **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** ऐसा कहा है (तत्त्वार्थ सूत्र-अध्याय १, सूत्र २) अथवा **'तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वम्'** ऐसा कहा है (अष्टपाहुड-मोक्षपाहुड-गाथा ३८), ये सर्व विशेषण एकार्थवाची हैं - समान अर्थवाले हैं । इन सब का अर्थ यह जानना कि यथार्थ स्वरूप सहित पदार्थों का श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।

उक्तं च (कहा ही है) -

प्रदेशप्रचयात्कायाः द्रवणाद्द्रव्यनामकाः ।
परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्थाः तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ।।१।।

अर्थ - सम्यक्त्व के श्रद्धान में आने योग्य जो जीवादिक पदार्थ, वे बहुत प्रदेशों के प्रचय अर्थात् समूह के धारक हैं, इसलिये उन्हें काय कहते हैं । पुनश्च अपने गुण पर्यायों को द्रवते हैं-व्यापते हैं, इसलिये द्रव्य कहते हैं । पुनश्च जीव द्वारा जानने योग्य हैं इसलिये अर्थ कहते हैं । पुनश्च वस्तुस्वरूपपने के धारक हैं इसलिये तत्त्व कहते हैं । ऐसे इनका सामान्य लक्षण जानना ।

आगे षट्द्रव्यों के अधिकार कहते हैं -

छदव्वेसु य णामं उवलक्खणुवाय अत्थणे कालो ।
अत्थणखेत्तं संखा ठाणसरूवं फलं च हवे ।।५६२।।

षड्द्रव्येषु च नाम उपलक्षणानुवादः अस्तित्वकालः ।
अस्तित्वक्षेत्रं संख्या स्थानस्वरूपं फलं च भवेत् ।।५६२।।

टीका - षट् द्रव्यों के वर्णन में १) नाम, २) उपलक्षणानुवाद, ३) स्थिति, ४) क्षेत्र, ५) संख्या, ६) स्थानस्वरूप, ७) फल ये सात अधिकार जानने।

१) नाम - वहां प्रथम कहे हुये नाम अधिकार को कहते हैं -

जीवाजीवं दव्वं रूवारूवि त्ति होदि पत्तेयं ।
संसारत्था रूवा कम्मविमुक्का अरूवगया ।।५६३।।

जीवाजीवं द्रव्यं रूप्यरूपीति भवति प्रत्येकम् ।
संसारस्था रूपिणः कर्मविमुक्ता अरूपगताः ।।५६३।।

टीका – सामान्य संग्रहनय की अपेक्षा से द्रव्य एक प्रकार का है । पुनश्च वही द्रव्य भेद विवक्षा से दो प्रकार का है । एक जीवद्रव्य, एक अजीवद्रव्य । वहां जीव द्रव्य दो प्रकार का है – एक रूपी, एक अरूपी; वहां जो जीव संसार अवस्था में रहते हैं उनके मूर्तिक पुद्गलों का संबंध पाया जाता है, इसलिये उनको रूपी कहते हैं । तथा सिद्ध भगवान पौद्गलिक कर्मों से मुक्त हुये हैं, इसलिये उनको अरूपी कहते हैं । पुनश्च अजीव द्रव्य भी रूपी, अरूपी के भेद से दो प्रकार के हैं । वह कहते हैं –

अज्जीवेसु य रूवी पुग्गलदव्वाणि धम्म इदरो वि ।
आगासं कालो वि य चत्तारि अरूविणो होंति ।।५६४।।

अजीवेषु रूपीणि पुद्गलद्रव्याणि धर्म इतरोऽपि ।
आकाशं कालोऽपि च चत्वारि अरूपीणि भवंति ।।५६४।।

टीका – अजीव द्रव्यों में पुद्गल द्रव्य तो रूपी है । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुणयुक्त मूर्तिक है । धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये चार अरूपी हैं । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रहित अमूर्तिक हैं ।

यहां उक्तं च (कहा ही है) –

वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत् ।
कुर्वंति स्कंधवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः ।।

अर्थ – पूरन और गलन को जो करता है, उसे पुद्गल कहते हैं । जुड़ने का नाम पूरन है और बिछुड़ने का नाम गलन है क्योंकि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुणों द्वारा पूरन गलन को स्कंधवत् करते हैं । जैसे स्कंध में कोई परमाणु मिलते हैं, कोई बिछुड़ते हैं; वैसे परमाणु में कोई वर्णादिक का भेद उत्पन्न होता है वह मिलना है

और कोई नष्ट होता है वह बिछुड़ना है । इसलिये परमाणु हैं उन्हें पुद्गल कहते हैं।

पुनश्च इसतरह परमाणुओं के पुद्गलपना होनेपर द्वयणुक आदि स्कंधों के कैसे पुद्गलपना है ?

वह कहते हैं – कोई परमाणु मिलते हैं, कोई बिछुड़ते हैं, इसतरह प्रदेशों का पूरन गलन कर करके जो द्रवते हैं, द्रवेंगे और द्रवे हैं, इसलिये उनको पुद्गल कहते हैं । अपने स्वभावरूप परिणमने का नाम द्रवना है; इस द्रवत्व गुण से द्रव्य नाम पाता है ।

यहां प्रश्न – यदि परमाणु को अविभाग निरंश कहते हो, सो परमाणु छह कोणों से युक्त गोल आकारवाले हैं । जहां छह कोण हुये वहां छह अंश तो सहज ही आ गये, तो निरंश कैसे कहते हो ?

उक्तं च (कहा ही है) –

षट्कोणयुगपद्योगात्परमाणोः षडंशता ।
षण्णां समानदेशित्वे पिंडं स्यादणुमात्रकम् ।।१।।

अर्थ – युगपत् छह कोणों का समुदाय है इसलिये परमीणु को छह अंशपना संभवता है । छहों का समानरूप कहते हुये परमाणु मात्र पिंड होता है ।

उसका उत्तर – परमाणु के द्रव्यार्थिकनय से निरंशपना है, परंतु पर्यायार्थिकनय से छह अंश कहने में कुछ दोष नहीं है ।

उक्तं च (कहा ही है) –

आद्यंतरहितं द्रव्यं विश्लेषरहितांशकम् ।
स्कंधोपादानमत्यक्षं परमाणु प्रचक्षते ।।१।।

जो द्रव्य आदि अंत रहित है, जिसमें छह अंश पाये जाते हैं, वे कभी भी भिन्न भिन्न नहीं होते हैं; इसलिये भिन्न भाव रहित अंश के धारक हैं; तथा स्कंध ग्रहण की शक्ति का धारक है, तथा इन्द्रियगम्य नहीं है, ऐसे द्रव्य को परमाणु कहते हैं । परमाणु में कोणों की अपेक्षा से छह अंश हैं, वे अंश कभी भी भिन्न भिन्न नहीं होते। अथवा परमाणु से छोटा इस जगत में अन्य कोई पदार्थ भी नहीं है कि

जिसकी अपेक्षा से भाग कल्पना कर सकते हैं, इसलिये परमाणु को अविभाग कहते हैं । पुनश्च कोणों की अपेक्षा से छह अंश कहते हैं तो भी कुछ दोष नहीं है । तथा आदिपुराणादि में परमाणु गोल कहा है, सो यह षट्कोण युक्त आकार गोल क्षेत्र का ही भेद है इसलिये गोल कहा है । ऐसे अणु वा स्कंधरूप पुद्गल द्रव्य तो रूपी अजीव द्रव्य जानना । तथा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये चारों अरूपी अजीव द्रव्य जानने । इति नामाधिकारः (नामाधिकार समाप्त हुआ)।

२) लक्षण –

उवजोगो वण्णचऊ लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु ।
गदिठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ ।।५६५।।

उपयोगो वर्णचतुष्कं लक्षणमिह जीवपुद्गलानां तु ।
गतिस्थानावगाहवर्तनक्रियोपकारस्तु धर्मचतुर्णाम् ।।५६५।।

टीका – द्रव्य के लक्षण कहते हैं । वहां जीव और पुद्गलों के लक्षण (क्रमशः) उपयोग और वर्णचतुष्क जानना । वहां दर्शन-ज्ञान उपयोग जीवों का लक्षण है । वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पुद्गलों का लक्षण है । पुनश्च गति, स्थान, अवगाह, वर्तनारूप क्रिया का उपकार (निमित्त) ये धर्मादि चार द्रव्यों के लक्षण हैं । वहां गतिहेतुत्व धर्मद्रव्य का लक्षण है, स्थितिहेतुत्व अधर्मद्रव्य का लक्षण है, अवगाहहेतुत्व आकाशद्रव्य का लक्षण है, वर्तनाहेतुत्व कालद्रव्य का लक्षण है ।

गदिठाणोग्गहकिरिया जीवाणं पुग्गलाणमेव हवे ।
धम्मतिये ण हि किरिया मुक्खा पुण साधगा होंति ।।५६६।।

गतिस्थानावगाहक्रिया जीवानां पुद्गलानामेव भवेत् ।
धर्मत्रिके न हि क्रिया मुख्याः पुनः साधका भवंति ।।५६६।।

टीका – गति, स्थिति, अवगाह ये तीन क्रियायें जीव और पुद्गल ही के पायी जाती हैं । वहां प्रदेश से प्रदेशांतर को प्राप्त होना, वह गति क्रिया है । गमन करके कहीं रुकना वह स्थिति क्रिया है । गति-स्थिति सहित वास करना (ठहरना-रहना), वह अवगाह क्रिया है । पुनश्च धर्म, अधर्म, आकाश में ये क्रिया नहीं हैं; क्योंकि इनके स्थानचलन, प्रदेशचलन का अभाव है । वहां अपने स्थान को छोड़कर

अन्य स्थान को प्राप्त होना, वह स्थानचलन है और प्रदेशों का चंचलरूप होना, वह प्रदेशचलन है । पुनश्च धर्मादिक द्रव्य गति, स्थिति, अवगाह क्रिया के मुख्य साधक हैं ।

जीव, पुद्गलों की जो गति, स्थिति, अवगाह क्रिया होती हैं, उनको वे निमित्तमात्र ही हैं; वह कहते हैं –

जत्तस्स पहं ठत्तस्स आसणं णिवसगस्स वसदी वा ।
गदिठाणोग्गहकरणे धम्मतियं साधगं होदि ।।५६७।।

यातस्य पंथाः तिष्ठतः आसनं निवसकस्य वसतिर्वा ।
गतिस्थानावगाहकरणे धर्मत्रयं साधकं भवति ।।५६७।।

टीका – जैसे, गमन करनेवालों को पंथ अर्थात् मार्ग कारण है, रुकनेवालों को आसन अर्थात् स्थान कारण है, निवास करनेवालों को वसतिका अर्थात् निवास करने का क्षेत्र कारण है; वैसे गति, स्थिति, अवगाह के कारण धर्मादिक द्रव्य हैं। जैसे वे पंथादिक स्वयं तो गमनादि नहीं करते और जीवों को प्रेरक होकर गमनादि नहीं कराते, परंतु जो स्वयमेव गमनादि करते हैं, उनको कारणभूत होते हैं । सो कारण इतना ही है कि जहां पंथादिक हो, वहां ही वे गमनादिरूप प्रवर्तते हैं । वैसे धर्मादि द्रव्य स्वयं गमनादि नहीं करते, पुद्गलों को प्रेरक होकर गमनादि क्रिया नहीं कराते हैं, स्वयमेव ही गमनादि क्रियारूप प्रवर्तनेवाले जो जीव और पुद्गल, उनको सहकारी कारण होते हैं । सो कारण इतना ही है कि धर्मादिक द्रव्य जहां हो, वहां ही जीव और पुद्गल गमनादि क्रियारूप प्रवर्तते हैं ।

वत्तणहेदू कालो वत्तणगुणमविय दव्वणिचयेसु ।
कालाधारेणेव य वट्टंति हु सव्वदव्वाणि ।।५६८।।

वर्तनाहेतुः कालः वर्तनागुणमवेहि द्रव्यनिचयेषु ।
कालाधारेणैव च वर्तंते हि सर्वद्रव्याणि ।।५६८।।

टीका – **णिच्** प्रत्यय संयुक्त जो **वृतञ्** धातु, उसका कर्म में वा भाव में वर्तना शब्द निपजता है, इसका अर्थ यह होता है कि जो वर्तता है या वर्तनमात्र

होते हैं, उसको वर्तना कहते हैं । सो धर्मादिक द्रव्य अपनी अपनी पर्यायों की निष्पत्ति में स्वयमेव वर्तमान हैं । उनके किसी बाह्य कारणभूत उपकार बिना वह प्रवृत्ति होती नहीं, इसलिये उनके उस प्रवृत्ति कराने को कारण कालद्रव्य है । इसप्रकार वर्तना कालद्रव्य का उपकार जानना । यहां **णिच्** प्रत्यय का अर्थ यह है कि जो द्रव्य की पर्यायें वर्तती हैं उनके वर्तानेवाला काल है ।

वहां प्रश्न – जैसे शिष्य पढ़ता है और उपाध्याय पढ़ाते है वहां दोनों के पठनक्रिया देखी जाती है, वैसे धर्मादिक द्रव्य प्रवर्तते हैं और काल प्रवर्ताता है, तो धर्मादिक द्रव्य के समान काल के भी उन पर्यायों के प्रवर्तनरूप क्रिया का सद्भाव हुआ ?

वहां उत्तर – ऐसा नहीं है । यहां निमित्तमात्र वस्तु को हेतु का कर्ता कहते हैं । जैसे शीतकाल में शीत (ठण्डी) के कारण शिष्य पढ़ने में समर्थ नहीं थे, वहां कारीषा की अग्नि का निमित्त हुआ, तब वे पढ़ने लग गये । वहां निमित्तमात्र देखकर ऐसा कहते हैं कि यह कारीषा की अग्नि शिष्यों को पढ़ाती है; सो यह कारीषा की अग्नि स्वयं पढ़नेरूप क्रियावान नहीं होती है, उनके पढ़ने के निमित्तमात्र है । वैसे काल स्वयं क्रियावान नहीं होता, काल के निमित्त से वे स्वयमेव परिणमते हैं । इसलिये ऐसा कहते हैं कि उनको काल प्रवर्ताता है ।

पुनश्च उस काल का निर्णय कैसे होगा ?

वह कहते हैं – समय, घडी *(चौबीस मिनट की एक घडी तथा दो घडी का एक मुहूर्त कहलाता है)* इत्यादि क्रियाविशेषों को लोक में समय आदि कहते हैं। तथा समय, घडी इत्यादि द्वारा जो पचनादि क्रिया होती है उनको लोक में पाकादिक कहते हैं । वहां उनमें काल शब्द का आरोपण करके समयकाल, घडीकाल, पाककाल इत्यादि कहते हैं, सो यह व्यवहारकाल मुख्य काल के अस्तित्व को दर्शाता है । क्योंकि जो गौण है वह मुख्य की सापेक्षतावाला होता है । जैसे किसी पुरुष को सिंह कहा वहां जाना जाता है कि जगत में कोई सिंह नामक पदार्थ पाया जाता है । ऐसे काल का निश्चय करते हैं, केवलीभगवान प्रत्यक्ष जानते हैं ।

(हमें व्यतीत होनेवाला काल – सेकण्ड, मिनट, घण्टा ख्याल में आता है। जैसे हम कहेंगे हमने तीन घण्टे स्वाध्याय किया । इसे व्यवहारकाल कहते हैं – काल

कहा तो काल नाम की वस्तु-निश्चयकाल-मुख्यकाल अर्थात् कालद्रव्य होना ही चाहिये।)

पुनश्च छहों द्रव्य की वर्तना का कारण मुख्यकाल है । वर्तना गुण द्रव्यसमूह में ही पाया जाता है *(सभी द्रव्यों में पाया जाता है)* ऐसा होनेपर काल के आधार से सर्व द्रव्य प्रवर्तते हैं, अपनी अपनी पर्यायरूप से परिणमते हैं; इसलिये परिणमनरूप जो क्रिया तथा उनका परत्व और अपरत्व अर्थात् आगे पीछेपना, वह काल का उपकार है । (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५ सूत्र २२ - 'वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य'।)

यहां प्रश्न - क्रिया का परत्व-अपरत्व तो जीव पुद्गल में है, धर्मादि अमूर्तिक द्रव्यों में कैसे संभव है ? वह कहते हैं -

धम्माधम्मादीणं अगुरुगलहुगं तु छहिं वि वड्ढीहिं ।
हाणीहिं वि वड्ढंतो हीयंतो वट्टदे जम्हा ।।५६९।।

धर्म्माधर्म्मादीनामगुरुकलघुकं तु षड्भिरपि वृद्धिभिः ।
हानिभिरपि वर्धमानं हीयमानं वर्तते यस्मात् ।।५६९।।

टीका - क्योंकि धर्म अधर्मादि द्रव्यों के अपने द्रव्यत्व के कारणभूत शक्ति के विशेषरूप अगुरुलघु नामक गुण के अविभागप्रतिच्छेद हैं, वे अनंतभागवृद्धि आदि षट्स्थानपतितवृद्धि द्वारा तो बढ़ते हैं और अनंतभागहानि आदि षट्स्थानपतितहानि द्वारा घटते हैं, इसलिये वहां ऐसे परिणमन में भी मुख्यकाल ही को कारण जानना ।

ण य परिणमदि सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं ।
विविहपरिणामियाणं हवदि हु कालो सयं हेदू ।।५७०।।

न च परिणमति स्वयं स न च परिणमयति अन्यदन्यैः ।
विविधपरिणामिकानां भवति हि कालः स्वयं हेतुः ।।५७०।।

टीका - वह काल संक्रम अर्थात् पलटना, उसके विधान द्वारा अपने गुणों द्वारा परद्रव्यरूप होकर नहीं परिणमता, तथा परद्रव्य के गुणों को अपने में नहीं परिणमाता, पुनश्च प्रेरक हेतुकर्ता होकर भी अन्य द्रव्य को अन्य गुणों सहित नहीं परिणमाता परंतु नाना प्रकार के परिणामों को धारण करते हुये द्रव्य स्वयं स्वयमेव परिणमते हैं, उनको उदासीन सहज निमित्तमात्र होता है । जैसे मनुष्य के प्रातःकाल संबंधी क्रिया को प्रातःकाल

कारण है । क्रियारूप तो स्वयमेव मनुष्य ही प्रवर्तता है परंतु उनको निमित्त मात्र प्रभात का काल (प्रातःकाल) होता है, वैसे जानना ।

कालं अस्सिय दव्वं सगसगपज्जायपरिणदं होदि ।
पज्जायावट्ठाणं सुद्धणये होदि खणमेत्तं ।।५७१।।

कालमाश्रित्यं द्रव्यं स्वकस्वकपर्यायपरिणतं भवति ।
पर्यायावस्थानं शुद्धनयेन भवति क्षणमात्रम् ।।५७१।।

टीका – काल का निमित्तरूप आश्रय पाकर जीवादिक सर्व द्रव्य स्वकीय स्वकीय पर्यायरूप परिणमते हैं । उस पर्याय का जो अवस्थान अर्थात् रहने का जो काल, वह ऋजुसूत्रनय से अर्थपर्याय अपेक्षा एक समयमात्र जानना ।

ववहारो य वियप्पो भेदो तह पज्जओ त्ति एयट्ठो ।
ववहार अवट्ठाणट्ठिदी हु ववहारकालो दु ।।५७२।।

व्यवहारश्च विकल्पो भेदस्तथा पर्याय इत्येकार्थः ।
व्यवहारावस्थानस्थितिर्हि व्यवहारकालस्तु ।।५७२।।

टीका – व्यवहार, विकल्प, भेद और पर्याय ये सब एकार्थवाची हैं । इन शब्दों का एक अर्थ है । वहां व्यंजनपर्याय का अवस्थान अर्थात् वर्तमानपना उसके द्वारा स्थिति अर्थात् काल का प्रमाण, वही व्यवहारकाल है ।

अवरा पज्जायठिदी खणमेत्तं होदि तं च समओ त्ति ।
दोण्हमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ।।५७३।।

अवरा पर्यायस्थितिः क्षणमात्रं भवति सा च समय इति ।
द्वयोरण्वोरतिक्रमकालप्रमाणं भवेत् स तु ।।५७३।।

टीका – द्रव्यों के जघन्य पर्याय की स्थिति क्षणमात्र है । क्षण नाम समय का है । समीप तिष्ठनेवाले दो परमाणु मंद गमनरूप से परिणत होकर जितने काल में परस्पर उल्लंघन करते हैं, उस काल प्रमाण का नाम समय है ।

यहां प्रसंग पाकर दो गाथा कहते हैं –

णभ एय पयेसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो ।
बीयमणंतरखेत्तं जावदियं जाति तं समयकालो ।।१।।

आकाश के एक प्रदेश में स्थित परमाणु मंदगतिरूप से परिणमन करके उस प्रदेश के अनंतर दूसरे प्रदेश को जितने काल में प्राप्त हो, वह समय नामक काल है ।

वह प्रदेश कितना है ? वह कहते हैं –

जेत्ती वि खेत्तमेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च ।
तं च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ।।२।।

परमाणु के आगे और पीछे के कारण आकाशद्रव्य है । आकाश में ऐसा कहते हैं कि यह आकाश इस परमाणु के आगे है, यह पीछे है । वह आकाशद्रव्य उस परमाणु से जितना रोका जाय, व्याप्त हो, उस क्षेत्र का नाम प्रदेश है ।

आगे व्यवहारकाल को कहते हैं –

आवलिअसंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो ।
सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवा लवो भणियो ।।५७४।।

आवलिरसंख्यसमया संख्येयावलिसमूह उच्छ्वासः ।
सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः सप्तस्तोका लवो भणितः ।।५७४।।

टीका – जघन्य युक्तासंख्यात समयों का समूह, वह आवली है । तथा संख्यात आवली का समूह, वह उच्छ्वास है । वह उच्छ्वास कैसा है ?

उक्तं च (कहा ही है) –

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासाणिस्सासो एगो णो त्ति आहीदो ।।१।।

जो कोई मनुष्य आढ्य अर्थात् सुखी हो, आलस्य रोग आदि से रहित हो, स्वाधीन हो, उसके श्वासोच्छ्वास नामक एक प्राण कहा है, उसका काल जानना। पुनश्च सात उच्छ्वासों का समूह, वह स्तोक नामक काल है । पुनश्च सात स्तोक का समूह, वह लव नामक काल है ।

अट्ठत्तीसद्धलवा नाली बेनालियो मुहुत्तं तु ।
एगसमयेण हीणं भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ।।५७५।।

अष्टत्रिंशदर्धलवा नाली द्विनालिको मुहूर्तस्तु ।
एकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्तस्ततः शेषः ।।५७५।।

टीका – साढ़े अड़तीस लवों का समूह, वह नाली है । नाली नाम घडी का है *(२४ मिनट की एक घडी होती है)* । दो घडी का समूह, वह मुहूर्त है। इस मुहूर्त में से एक समय घटाइये तब भिन्नमुहूर्त होता है और इसी को उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त कहते हैं । यहां से आगे दो समय कम मुहूर्त इत्यादि अंतर्मुहूर्त के विशेष (भेद) जानने ।

यहां प्रासंगिक गाथा कहते हैं –

ससमयमावलिअवरं समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं ।
मज्झासंखवियप्पं वियाण अंतोमुहूत्तमिणं ।।

एक समय अधिक आवलीमात्र जघन्य अंतर्मुहूर्त है । तथा एक समय कम मुहूर्तमात्र उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । मध्य समय में दो समय अधिक आवली से लेकर दो समय कम मुहूर्त तक असंख्यात भेदोंवाले मध्यम अंतर्मुहूर्त हैं ऐसे जानना ।

दिवसो पक्खो मासो उडु अयणं वस्समेवमादी हु ।
संखेज्जासंखेज्जाणंताओ होदि ववहारो ।।५७६।।

दिवसः पक्षोः मासः ऋतुरयनं वर्षमेवमादिर्हि ।
संख्येयासंख्येयानंता भवंति व्यवहाराः ।।५७६।।

टीका – तीस मुहूर्तमात्र अहोरात्र (दिनरात) है । मुख्यपने पंद्रह अहोरात्र मात्र पक्ष है । दो पक्ष मात्र एक मास (महिना) है । दो मास मात्र एक ऋतु होता है तीन ऋतुमात्र एक अयन होता है । दो अयन मात्र एक वर्ष होता है । इत्यादि आवली से लेकर संख्यात, असंख्यात, अनंत पर्यंत अनुक्रम से श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, केवलज्ञान का विषयभूत व्यवहारकाल जानना ।

ववहारो पुण कालो माणुसखेत्तम्हि जाणिदव्वो दु ।
जोइसियाणं चारे ववहारो खलु समाणो त्ति ।।५७७।।

व्यवहारः पुनः कालः मानुषक्षेत्रे ज्ञातव्यस्तु ।
ज्योतिष्काणां चारे व्यवहारः खलु समान इति ।।५७७ ।।

टीका – पुनश्च व्यवहारकाल मनुष्यक्षेत्र में प्रकटरूप जानने योग्य हैं; क्योंकि मनुष्यक्षेत्र में ज्योतिषी देवों का चलने का काल *(सूर्य-चन्द्र-तारे आदि ज्योतिषियों के विमानों का भ्रमण का काल)* और व्यवहारकाल समान है ।

ववहारो पुण तिविहो तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु ।
तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणो दु ।।५७८।।

व्यवहारः पुनस्त्रिविधोऽतीतो वर्तमानो भविष्यंस्तु ।
अतीतः संख्येयावलिहतसिद्धानां प्रमाणं तु ।।५७८।।

टीका – व्यवहारकाल तीन प्रकार का है – अतीत(भूतकाल), अनागत(भविष्यकाल), और वर्तमान । वहां अतीतकाल सिद्धराशि को संख्यात आवली से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना । कैसे ? वह कहते हैं – छह महिने और आठ समय में छह सौ आठ जीव सिद्ध होते हैं, तो सर्व जीवराशि के अनंतवें भागप्रमाण सर्व सिद्ध कितने काल में हुये ? ऐसा त्रैराशिक करना । वहां प्रमाणराशि छह सौ आठ, फलराशि छह महिने आठ समय, इच्छाराशि सिद्धों का प्रमाण । सो फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर लब्धराशि संख्यात आवली से सिद्धों को गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतनी आयी । वही अनादि से लेकर अतीतकाल का प्रमाण जानना ।

समयो हु वट्टमाणो जीवादो सव्वपुग्गलादो वि ।
भावी अणंतगुणिदो इदि ववहारो हवे कालो ।।५७९।।

समयो हि वर्तमानो जीवात् सर्वपुद्गलादपि ।
भावी अनन्तगुणित इति व्यवहारो भवेत्कालः ।।५७९।।

टीका – वर्तमानकाल एक समय मात्र जानना । पुनश्च भावी जो अनागतकाल,

वह सर्व जीवराशि से और पुद्गलराशि से भी अनंतगुणा जानना । ऐसे व्यवहारकाल तीन प्रकार का जानना ।

कालो वि य ववएसो सब्भारूवओ हवदि णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ।।५८०।।

काल इति च व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः ।
उत्पन्नप्रध्वंसी अपरो दीर्घान्तरस्थायी ।।५८०।।

टीका – लोक में जो काल ऐसा कहते हैं, वह मुख्यकाल के अस्तित्व को कहनेवाला है । मुख्य बिना गौण भी नहीं होता । यदि सिंह पदार्थ ही न हो तो 'यह पुरुष सिंह है' यह कैसे कहने में आयेगा ? सो मुख्यकाल द्रव्य से नित्य है तथापि पर्याय से उत्पाद व्यय का धारक है । इसलिये इसे उत्पन्नप्रध्वंसी कहते हैं। पुनश्च व्यवहारकाल है वह वर्तमानकाल की अपेक्षा उत्पाद-व्ययरूप है । इसलिये उसे उत्पन्नप्रध्वंसी कहते हैं । तथा अतीत, अनागत की अपेक्षा बहुत काल तक स्थिति का धारक है इसलिये दीर्घांतर स्थायी है । यहां प्रासंगिक श्लोक कहते हैं –

निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिताः ।
बहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ।।

उन वस्तुओं में रहनेवाली जो परिणमनरूप योग्यता वह अंतरंग निमित्त है, और उस परिणमन का निश्चयकाल बाह्यनिमित्त है ऐसे तत्त्वदर्शियों द्वारा निश्चय किया है । इति उपलक्षणानुवादाधिकारः (उपलक्षण अनुवाद अधिकार समाप्त हुआ) ।

३) स्थिति –

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकालअत्थपज्जाये ।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तदो ।।५८१।।

षड्द्रव्यावस्थानं सदृशं त्रिकालार्थपर्याये ।
व्यंजनपर्याये वा मिलिते तेषां स्थितित्वात् ।।५८१।।

टीका – अवस्थान नाम स्थिति का है; सो छहों द्रव्यों का अवस्थान समान है । किस कारण ? वह कहते हैं – सूक्ष्म वचनअगोचर क्षणस्थायी ऐसी तो अर्थपर्याय

और स्थूल, वचनगोचर, चिरस्थायी ऐसी व्यंजनपर्याय, सो त्रिकालसंबंधी अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय मिलकर उन सर्व ही द्रव्यों की स्थिति होती है । इसलिये सर्व द्रव्यों का अवस्थान समान कहा । सर्व द्रव्य अनादिनिधन हैं ।

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं –

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चा वि ।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ।।५८२।।

एकद्रव्ये ये अर्थपर्याया व्यंजनपर्यायाश्चापि ।
अतीतानागतभूताः तावत्तद् भवति द्रव्यम् ।।५८२।।

टीका – एक द्रव्य में जो गुणों के परिणमनरूप षट्स्थानपतित वृद्धि हानि सहित अर्थपर्याय तथा द्रव्य के आकारादि परिणमनरूप व्यंजनपर्याय, वे अतीत अनागत और अपि शब्द से वर्तमान संबंधी जब तक हैं, तब तक द्रव्य जानना, क्योंकि द्रव्य उनसे जुदा नहीं है; सर्व पर्यायों का समूह, वही द्रव्य है । इति स्थित्यधिकारः (स्थिति अधिकार समाप्त हुआ) ।

४) *क्षेत्र* –

आगासं वज्जित्ता सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि बहिं ।
वावी धम्माधम्मा णवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा ।।५८३।।

आकाशं वर्जयित्वा सर्वाणि लोके चैव न संति बहिः ।
व्यापिनौ धर्माधर्मौ अवस्थितावचलितौ नित्यौ ।।५८३।।

टीका – अब क्षेत्र कहते हैं । आकाश बिना अवशेष सर्व द्रव्य लोक में ही हैं, बाह्य अलोक में नहीं हैं । उनमें से धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य तिल में तेल की भांति सर्व लोक में व्याप्त हैं, इसलिये व्यापी हैं । पुनश्च निजस्थान से स्थानांतर में जाते नहीं हैं, इसलिये अवस्थित हैं । पुनश्च एक स्थान में भी प्रदेशों का चंचलपना उनके नहीं है, इसलिये अचलित हैं । पुनश्च त्रिकाल में विनाश नहीं है, इसलिये नित्य हैं । ऐसे धर्म, अधर्मद्रव्य जानने । यहां प्रासंगिक श्लोक –

औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्तः कटाकाशतिलेषु च ।।

आधार तीन प्रकार का है – औपश्लेषिक, वैषयिक, अभिव्यापक । वहां चटाई पर कुमार सो रहा है कहते हैं, वहां औपश्लेषिक आधार जानना । पुनश्च आकाश में घटादिक द्रव्य तिष्ठते हैं (रहते हैं, स्थित हैं) कहते हैं वहां वैषयिक आधार जानना। पुनश्च तिल में तेल है कहते हैं, वहां अभिव्यापक आधार जानना । सो यहां तिल में तेल की भांति लोकाकाश के सर्व प्रदेशों में धर्म, अधर्मद्रव्य अपने प्रदेशों से व्याप्त हैं । इसलिये यहां अभिव्यापक आधार है । इसीलिये आचार्यों ने धर्म-अधर्म द्रव्यों को व्यापी कहा है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगो त्ति ।
अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावडो जीवो ।।५८४।।

लोकस्यासंख्येयभागप्रभृतिस्तु सर्वलोक इति ।
आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे व्यापृतो जीवः ।।५८४।।

टीका – जीव का क्षेत्र कहते हैं, वह शरीरमात्र की अपेक्षा से तो सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त की जघन्य अवगाहना से लेकर एक-एक प्रदेश से बढ़ते हुये, महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना तक क्षेत्र जानना । उसके ऊपर समुद्घात की अपेक्षा से वेदना समुद्घातवालों के क्षेत्र में एक-एक प्रदेश बढ़ते हुये, महामत्स्य की अवगाहना से तिगुणे लम्बे, चौड़े क्षेत्र तक क्षेत्र जानना । पुनश्च इसके ऊपर एक-एक प्रदेश बढ़ते हुये, मारणांतिक समुद्घातवाले के उत्कृष्ट क्षेत्र तक जानना । स्वयंभूरमणसमुद्र के बाह्य स्थंडिल क्षेत्र *(बाहरी भाग)* में स्थित जो महामत्स्य जब सातवें नरक में महारौरव नामक श्रेणीबद्ध बिल के प्रति मारणांतिक समुद्घात करता है, तब उसमें पांच सौ यौजन चौड़ा, अढ़ाई सौ योजन ऊंचा, प्रथम वक्रगति में एक राजू, द्वितीय वक्र में आधा राजू, तृतीय वक्र में छह राजू लम्बाईवाला उत्कृष्ट क्षेत्र होता है । वहां तक क्षेत्र जानना ।

पुनश्च उसके ऊपर केवलीसमुद्घात में लोकपूरण तक क्षेत्र जानना । सो ऐसे सर्व भेदरूप क्षेत्रों में अपने प्रदेशों का विस्तार-संकोच होनेपर जीवद्रव्य **व्यापृतं** अर्थात् व्यापक होता है । संकोच होनेपर अल्पक्षेत्र में आत्मा के प्रदेश अवगाहरूप रहते हैं,

विस्तार होनेपर वे फैलकर बड़े क्षेत्र में रहते हैं । क्योंकि जीव के अवगाहना के भेद और उपपाद और समुद्घात के भेद सभी संभव हैं । इसलिये पूर्वोक्त जीव का क्षेत्र जानना ।

पोग्गलदव्वाणं पुण एयपदेसादि होंति भजणिज्जा ।
एक्केक्को दु पदेसो कालाणूणं धुवो होदि ।।५८५।।

पुद्गलद्रव्याणां पुनरेकप्रदेशादयो भवन्ति भजनीयाः ।
एकैकस्तु प्रदेशः कालाणूनां ध्रुवो भवति ।।५८५।।

टीका – पुद्गल द्रव्यों के एक प्रदेश आदि यथासंभव भजनीय अर्थात् भेद करनेयोग्य क्षेत्र जानना, वह कहते हैं – दो अणुओं का स्कंध एक प्रदेश में रहे या दो प्रदेश में रहे; तीन परमाणुओं का स्कंध एक प्रदेश या दो प्रदेश या तीन प्रदेश में रहे; ऐसा जानना । कालाणु लोकाकाश के एक एक प्रदेश में एक एक पाये जाते हैं, वे ध्रुवरूप हैं, भिन्न भिन्न सत्त्व (सत्ता)के धारक हैं इसलिये उनका क्षेत्र एक-एकप्रदेशी है ।

संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा ।
लोगागासेव ठिदी एगपदेसो अणुस्स हवे ।।५८६।।

संख्येयासंख्येयानंता वा भवंति पुद्गलप्रदेशाः ।
लोकाकाशे एव स्थितिरेकप्रदेशोऽणोर्भवेत् ।।५८६।।

टीका – दो अणुओं के स्कंध से लेकर पुद्गल स्कंध संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणुरूप हैं । तथापि वे सब लोकाकाश में ही रहते हैं । जैसे जल से सम्पूर्ण भरे हुये पात्र में क्रम से ड़ाले हुये लवण, भस्म(राख), सूई आदि एकक्षेत्रावगाहरूप रहते हैं, वैसे जानना । अविभागी परमाणु का क्षेत्र एक ही प्रदेशमात्र होता है ।

लोगागासपदेसा छद्दव्वेहिं फुडा सदा होंति ।
सव्वमलोगागासं अण्णेहिं विविज्जियं होदि ।।५८७।।

लोकाकाशप्रदेशाः षड्द्रव्यैः स्फुटाः सदा भवंति ।
सर्वमलोकाकाशमन्यैर्विवर्जितं भवति ।।५८७ ।।

टीका - लोकाकाश के प्रदेश सर्व छहों द्रव्यों से सदाकाल प्रकट व्याप्त हैं । पुनश्च अलोकाकाश सभी अन्य द्रव्यों से रहित है । इति क्षेत्राधिकारः (क्षेत्राधिकार समाप्त हुआ) ।

५) संख्या -

जीवा अणंतसंखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु ।
धम्मतियं एक्केक्कं लोगपदेसप्पमा कालो ।।५८८।।

जीवा अनंतसंख्या अनंतगुणाः पुद्गला हि ततस्तु ।
धर्मत्रिकमेकैकं लोकप्रदेशप्रमः कालः ।।५८८।।

टीका - संख्या कहते हैं - वहां द्रव्य प्रमाण से जीवद्रव्य अनंत हैं। उनसे अनंतगुणे पुद्गल परमाणु हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य एक-एक ही हैं। क्योंकि ये तीनों अखंड द्रव्य हैं। जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं, उतने कालाणु हैं।

लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ।।५८९।।

लोकाकाशप्रदेशे एकैके ये स्थिता हि एकैकाः ।
रत्नानां राशिरिव ते कालाणवो मंतव्याः ।।५८९।।

टीका - लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में जो एक-एक स्थित हैं तथा रत्नों की राशि में रत्न भिन्न भिन्न रहते हैं उस के समान भिन्न भिन्न रहते हैं, वे कालाणु जानने ।

ववहारो पुण कालो पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो ।
तत्तो अणंतगुणिदा आगासपदेसपरिसंखा ।।५९०।।

व्यवहारः पुनः कालः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणमात्रः ।
तत अनंतगुणिता आकाशप्रदेशपरिसंख्या ।।५९०।।

टीका - व्यवहारकाल जो समयरूप है वह पुद्गल द्रव्य से अनंतगुणा जानना। उनसे अनंतगुणा सर्व आकाश के प्रदेशों की संख्या जाननी ।

लोगागासपदेसा धम्माधम्मेगजीवगपदेसा ।
सरिसा हु पदेसो पुण परमाणुअवट्ठिदं खेत्तं ।।५९१।।

लोकाकाशप्रदेशा धर्माधर्मैकजीवगप्रदेशाः ।
सदृशा हि प्रदेशः पुनः परमाण्ववस्थितं क्षेत्रम् ।।५९१।।

टीका – लोकाकाश के प्रदेश, धर्मद्रव्य के प्रदेश, अधर्मद्रव्य के प्रदेश और एक जीवद्रव्य के प्रदेश सभी संख्या से समान हैं क्योंकि ये सर्व जगत्श्रेणी के घनप्रमाण हैं । पुद्गल परमाणु जितना क्षेत्र रोकता है, वह प्रदेश का प्रमाण है । इसलिये जघन्य क्षेत्र और जघन्य द्रव्य अविभागी है ।

आगे क्षेत्रप्रमाण से छहों द्रव्यों का प्रमाण कहते हैं । वहां जीवद्रव्य अनंतलोक प्रमाण हैं । लोकाकाश के प्रदेशों से अनंतगुणे हैं । कैसे ? वह त्रैराशिक द्वारा कहते हैं – प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि जीवद्रव्य का प्रमाण। सो फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर लब्धराशि जीवराशि को लोक का भाग दे, इतना आया । सो यह शलाका का प्रमाण आया । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि लोक, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका का प्रमाण । सो पूर्वोक्त शलाका का प्रमाण जीवराशि को लोक का भाग देनेपर अनंत आया, उतना जानना । इस अनंत को फलराशि लोक से गुणा करके प्रमाणराशि एक का भाग देनेपर, लब्धराशि अनंतलोकप्रमाण हुयी । इसलिये जीवद्रव्य अनंतलोकप्रमाण कहे । ऐसे ही सर्वत्र कालप्रमाणादिक में त्रैराशिक द्वारा साधन कर लेना ।

पुनश्च जीवों से पुद्गल अनंतगुणे हैं । पुनश्च धर्म, अधर्म, लोकाकाश और कालद्रव्य ये लोकमात्र प्रदेशों के धारक हैं । व्यवहारकाल पुद्गलद्रव्य से अनंतगुणे हैं । अलोकाकाश के प्रदेश काल से अनंतगुणे हैं ।

पुनश्च कालप्रमाण से जीवद्रव्य का प्रमाण कहते हैं – प्रमाणराशि अतीतकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि जीवों का प्रमाण जानना । यहां लब्धराशि मात्र शलाका अनंत हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि अतीतकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाकाप्रमाण । सो पूर्वोक्त प्रकार से फल से इच्छा को गुणा करके प्रमाण का भाग देनेपर लब्धराशिप्रमाण अतीत काल से अनंतगुणा जीवों का प्रमाण जानना।

इनसे पुद्गलद्रव्य, व्यवहारकाल के समय और अलोकाकाश के प्रदेश क्रम से अनंतगुणे अनंतगुणे अनंत अतीतकाल मात्र जानना ।

पुनश्च धर्मादिक का प्रमाण कहते हैं – प्रमाणराशि कल्पकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि लोकप्रमाण, वहां लब्धराशिप्रमाण शलाका असंख्यात हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि कल्पकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण । सो पूर्वोक्त प्रकार से करनेपर लब्धराशि असंख्यात कल्पप्रमाण धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल ये चारों जानने । बीस कोडाकोडी सागर के संख्यात पल्य हुये, उसप्रमाण कल्पकाल है । इससे असंख्यातगुणे धर्म, अधर्म, लोकाकाश, कालद्रव्य के प्रदेश हैं ।

पुनश्च भावप्रमाण द्वारा जीवद्रव्य के प्रमाण में प्रमाणराशि जीवद्रव्य का प्रमाण, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान, लब्धप्रमाण शलाका अनंत । पुनश्च प्रमाणराशि शलाका का प्रमाण, फलराशि केवलज्ञान, इच्छाराशि एक शलाका । सो पूर्वोक्त प्रकार से करनेपर लब्धराशिप्रमाण केवलज्ञान के अनंतवें भागमात्र जीवद्रव्य जानने । वे पुद्गल, काल, अलोकाकाश की अपेक्षा चार बार अनंत का भाग केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण को देनेपर जो प्रमाण आये, उतने जीवद्रव्य हैं । उनसे अनंतगुणे पुद्गल हैं। उनसे अनंतगुणे काल के समय हैं । उनसे अनंतगुणे अलोकाकाश के प्रदेश हैं । वे भी केवलज्ञान के अनंतवें भाग ही हैं । पुनश्च धर्मादिक के प्रमाण में प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि अवधिज्ञान के भेद, लब्धराशिप्रमाण शलाका असंख्यात हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि शलाका का प्रमाण, फलराशि अवधिज्ञान के भेद, इच्छाराशि एक शलाका, सो पूर्वोक्त प्रकार से करनेपर अवधिज्ञान के जितने भेद हैं, उसके असंख्यातवें भागप्रमाण धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल इन चारों के एक–एक प्रदेशों का प्रमाण हुआ। इति संख्याधिकारः (संख्या अधिकार समाप्त हुआ) ।

६) *स्थानस्वरूप* –

सव्वमरूवी दव्वं अवट्ठिदं अचलिआ पदेसा वि ।
रूवी जीवा चलिया तिवियप्पा होंति हु पदेसा ।।५९२।।

सर्वमरूपि द्रव्यमवस्थितमचलिताः प्रदेशा अपि ।
रूपिणो जीवाश्चलितास्त्रिविकल्पा भवंति हि प्रदेशाः ।।५९२।।

टीका – सर्व अरूपी द्रव्य अर्थात् मुक्त जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अवस्थित हैं, अपने स्थान से चलते नहीं है । पुनश्च इनके प्रदेश भी अचलित ही हैं, एक स्थान में भी चलित नहीं है । पुनश्च रूपी जीव अर्थात् संसारी जीव चलित हैं, स्थान से स्थानांतर में गमनादि करते हैं । पुनश्च संसारी जीवों के प्रदेश तीन प्रकार के हैं – विग्रहगति में सर्व चलित ही हैं, अयोगकेवली गुणस्थान में अचलित ही हैं, अवशेष जीव रहे उनके आठ प्रदेश तो अचलित हैं और शेष प्रदेश चलित हैं । योगरूप परिणमन से इस आत्मा के अन्य प्रदेश तो चलित होते हैं और आठ प्रदेश तो अकंप ही रहते हैं ।

पोग्गलदव्वम्हि अणू संखेज्जादी हवंति चलिदा हु ।
चरिममहक्खंधम्मि य चलाचल होंति पदेसा ।।५९३।।

पुद्गलद्रव्ये अणवः संख्यातादयो भवन्ति चलिता हि ।
चरममहास्कन्धे च चलाचला भवंति हि प्रदेशाः ।।५९३।।

टीका – पुद्गल द्रव्य में परमाणु और द्व्यणुक आदि संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणुओं के स्कंध चलित हैं । अंतिम महास्कंध के कितने ही परमाणु अचलित हैं अपने स्थान से त्रिकाल में स्थानांतर को प्राप्त नहीं होते । तथा कितने ही परमाणु चलित हैं, वे यथायोग्य चंचल होते हैं ।

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्जगेहि अंतरिया ।
आहारतेजभासामणकम्मइया धुवक्खंधा ।।५९४।।
सांतरणिरंतरेण य सुण्णा पत्तेयदेहधुवसुण्णा ।
बादरणिगोदसुण्णा सुहुमणिगोदा णभो महक्खंधा ।।५९५।जुम्मं।

अणुसंख्यातासंख्यातानन्ताश्च अग्राह्यकाभिरन्तरिताः ।
आहारतेजोभाषामनःकार्माण ध्रुवस्कन्धाः ।।५९४।।
सान्तरनिरन्तरया च शून्या प्रत्येकदेहध्रुवशून्याः ।
बादरनिगोदशून्याः सूक्ष्मनिगोदा नभो महास्कन्धाः ।।५९५।।युग्मम्।

टीका – पुद्गल द्रव्य के भेदरूप जो वर्गणा, वे तेइस भेदयुक्त हैं –

१) अणुवर्गणा, २) संख्याताणुवर्गणा, ३) असंख्याताणुवर्गणा, ४) अनंतानुवर्गणा, ५) आहारवर्गणा, ६) अग्राह्यवर्गणा, ७) तेजसशरीरवर्गणा, ८) अग्राह्यवर्गणा, ९) भाषावर्गणा, १०) अग्राह्यवर्गणा, ११) मनोवर्गणा, १२) अग्राह्यवर्गणा, १३) कार्माणवर्गणा, १४) ध्रुववर्गणा, १५) सांतरनिरंतरवर्गणा १६) शून्यवर्गणा, १७) प्रत्येकशरीरवर्गणा, १८) ध्रुवशून्यवर्गणा, १९) बादरनिगोदवर्गणा, २०) शून्यवर्गणा, २१) सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, २२) नभोवर्गणा, २३) महास्कंधवर्गणा ये तेइस भेद जानने ।

यहां प्रासंगिक श्लोक कहते हैं -

मूर्तिसत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्‌गलः ।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा ।।१।।

मूर्तिक पदार्थों में और संसारी जीव में पुद्‌गल शब्द प्रवर्तता है । पुनश्च अकर्मजाति, कर्मजाति और नोकर्मजाति के जो पुद्‌गल उनमें वर्गणा शब्द प्रवर्तता है । सो अब यहां तेइस जाति की वर्गणा में कितने कितने परमाणु पाये जाते हैं, उसका प्रमाण कहते हैं ।

वहां अणुवर्गणा तो एक एक परमाणुरूप है । इसमें जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम भेद भी नहीं हैं । अन्य बाइस वर्गणा में भेद हैं । वहां जघन्य और उत्कृष्ट भेद कहते हैं, सो जघन्य के ऊपर एक एक परमाणु बढ़ाते हुये उत्कृष्ट के नीचे के एक तक बढ़ानेपर जितने भेद होते हैं, उतने मध्य के भेद जानने ।

संख्याताणुवर्गणा में जघन्य दो अणुओं का स्कंध है और उत्कृष्ट तो उत्कृष्टसंख्यात अणुओं का स्कंध है ।

असंख्याताणुवर्गणा में जघन्य तो जघन्य परीतासंख्यात परमाणुओं का स्कंध है और उत्कृष्ट तो उत्कृष्टअसंख्यातासंख्यात परमाणुओं का स्कंध है । यहां विवक्षित वर्गणा लाने के लिये गुणकार का ज्ञान करना हो तो, विवक्षित वर्गणा को उसके नीचे की वर्गणा का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वही गुणकार का प्रमाण जानना। उस गुणकार से नीचे की वर्गणा को गुणा करनेपर विवक्षित वर्गणा होती है । जैसे विवक्षित तीन अणुओं का स्कंध और नीचे दो अणुओं का स्कंध, वहां तीन को दो का भाग देनेपर डेढ़ आया, वही गुणकार है । दो को डेढ़ से गुणा करनेपर तीन होते हैं, ऐसे सर्वत्र जानना ।

पुनश्च यहां संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा में जघन्य का भाग उत्कृष्ट को देनेपर जो प्रमाण आता है, वही जघन्य का गुणकार जानना । इस गुणकार से जघन्य को गुणित करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अनंताणुवर्गणा में उत्कृष्ट असंख्याताणुवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है और जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भाग मात्र जो अनंत उससे गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर आहारवर्गणा में उत्कृष्ट अनंताणुवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है तथा इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट आहारवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है तथा जघन्य भेद को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर तेजसशरीरवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट तेजसवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर भाषावर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट भाषावर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत से

गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर मनोवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट मनोवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागप्रमाण अनंत से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर कार्माणवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागप्रमाण अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर ध्रुववर्गणा है । वहां उत्कृष्ट कार्माणवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को अनंतगुणा जीवराशि मात्र अनंत से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर सांतरनिरंतरवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट ध्रुववर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को अनंतगुणा जीवराशि के प्रमाण से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

ऐसी जो ये अणुवर्गणा से लेकर पंद्रह वर्गणा कही, वे सदृश परिणाम सहित, एक एक वर्गणा लोक में अनंत पुद्गल राशि के वर्गमूल प्रमाण पायी जाती हैं परंतु कुछ हीन हीन क्रम से पायी जाती हैं । वहां प्रतिभागहार सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र है । इस कथन को विशेष से आगे कहेंगे ।

उसके ऊपर शून्यवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट सांतरनिरंतरवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को अनंतगुणा जीवराशि के प्रमाण से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है । ऐसे सोलह वर्गणा सिद्ध हुयी ।

उसके ऊपर प्रत्येकशरीरवर्गणा है । एक शरीर एक जीव का हो उसको प्रत्येकशरीर

कहते हैं । वहां जो विस्रसोपचय सहित कर्म और नोकर्म उनका एक स्कंध, उसको प्रत्येकशरीरवर्गणा कहते हैं । वहां उत्कृष्ट शून्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । सो यह जघन्य भेद कहां पाया जाता है ? वह कहते हैं–

जिसके कर्म के अंश क्षयरूप हुये हैं ऐसा कोई क्षपितकर्मांशिक जीव, वह कोटिपूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारक मनुष्य होकर, अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपर सम्यक्त्व और संयम दोनों एक साथ अंगीकार करके सयोग केवली हुआ वह कुछ कम कोटिपूर्व तक औदारिकशरीर और तेजसशरीर की तो जिसप्रकार कहा है उसप्रकार निर्जरा करता हुआ और कार्माणशरीर की गुणश्रेणी निर्जरा करता हुआ, अयोगकेवली के अंतिम समय को प्राप्त हुआ; उसके आयु कर्म, औदारिक, तेजसशरीर अधिक नाम, गोत्र, वेदनीय कर्म के परमाणुओं के समूहरूप जो औदारिक, तेजस, कार्माण इन तीन शरीरों का स्कंध, वह जघन्य प्रत्येकशरीरवर्गणा है । इस जघन्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा होती है । वह कहां पायी जाती है ? वह कहते हैं –

नंदीश्वर नामक द्वीप में अकृत्रिम चैत्यालय हैं । वहां धूप के घड़े हैं । उनमें वा स्वयंभूरमणद्वीप में उत्पन्न दावानल उनमें, जो बादर पर्याप्त अग्निकाय जीव हैं वहां असंख्यात आवली के वर्गप्रमाण जीवों के शरीरों का एक स्कंध है । वहां गुणित कर्मांशिक अर्थात् जिनके कर्मों का संचय बहुत हैं ऐसे जीव बहुत भी हो तो आवली के असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, इनका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण इन तीन शरीरों का जो एक स्कंध, वह उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा है ।

उसके ऊपर ध्रुवशून्यवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सब मिथ्यादृष्टि जीवों का जो प्रमाण, उसको असंख्यात लोक का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उससे गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर बादरनिगोदवर्गणा है । सो बादर निगोद जीवों का विस्रसोपचय सहित कर्म–नोकर्मवर्गणाओं का जो एक स्कंध उसको बादरनिगोदवर्गणा कहते हैं । सो उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक जघन्य बादरनिगोदवर्गणा है । वह कहां पायी जाती है ? वह कहते हैं –

क्षय किये है कर्म अंश जिसने ऐसा कोई क्षपितकर्मांशिक जीव, वह कोटिपूर्व वर्षप्रमाण आयु का धारी मनुष्य होकर गर्भ से अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपर सम्यक्त्व और संयम को युगपत् अंगीकार करके, कुछ कम कोटिपूर्व वर्षों तक कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा करता हुआ जब सिद्धपद पाने को एक अंतर्मुहूर्त शेष रहा तब क्षपकश्रेणी चढ़कर उत्कृष्ट कर्मनिर्जरा को करता हुआ क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती हुआ। उसके शरीर में जघन्य वा उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवी एकबंधनरूप बंधी पायी जाती हैं क्योंकि सर्व स्कंधों में पुलवी असंख्यात लोकप्रमाण कही हैं । एक-एक पुलवी में असंख्यातलोकप्रमाण शरीर पाये जाते हैं । तथा एक एक शरीर में सिद्धों से अनंतगुणे संसारीराशि के असंख्यातवें भागमात्र जीव पाये जाते हैं । सो आवली के असंख्यातवें भाग को असंख्यातलोक से गुणा करनेपर वहां शरीरों का प्रमाण हुआ । उसको एक शरीर में निगोद जीवों का जो प्रमाण, उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण आया उतना वहां एक स्कंध में बादर निगोद जीवों का प्रमाण जानना। उन जीवों के क्षीणकषाय गुणस्थान के पहले समय में अनंत जीव (निगोद) स्वयमेव अपने आयु के नाश से मरते हैं । पहले समय में जितने मरते हैं उनसे, उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने अधिक जीव दूसरे समय में मरते हैं । इसी अनुक्रम से क्षीणकषाय के प्रथम समय से लेकर पृथक्त्व आवली प्रमाण काल तक मरते हैं । पश्चात् पूर्व पूर्व समयसंबंधी मरे हुये जीवों के प्रमाण को आवली के संख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतने पहले पहले समय से अधिक प्रतिसमय मरते हैं । सो क्षीणकषाय गुणस्थान का काल आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण अवशेष रहे वहां तक इसी अनुक्रम से मरते हैं। उसके अनंतर समय में पहले पहले समय में मरे हुये जीवों के प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर जितने हो, उतने-उतने मरते हैं । उसके पश्चात् संख्यात पल्यों से पूर्व पूर्व समय संबंधी मरे हुये जीवों को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने उतने मरते हैं । सो ऐसा क्षीणकषाय गुणस्थान के अंत समय तक जानना । वहां अंतिम समय में जो जुदे जुदे असंख्यात लोकप्रमाण शरीरों से संयुक्त ऐसी आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवी, उनमें से जो गुणितकर्मांशिक जीव मरे उनसे हीन अवशेष जो अनंतानंत जीव गुणितकर्मांशिक रहे, उनका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण तीन शरीरों के परमाणुओं का जो एक स्कंध, वही जघन्य बादरनिगोदवर्गणा है । पुनश्च

इस जघन्य को जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा होती है । वह कैसे पायी जाती है ? वह कहते हैं –

स्वयंभूरमण नामक द्वीप में जो मूला आदि से लेकर सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति हैं उनके शरीरों में एक बंधन में बंधे हुये जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र पुलवी हैं । उनमें रहनेवाले जो गुणितकर्मांशिक जीव अनंतानंत पाये जाते हैं । उनका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण तीन शरीरों के परमाणुओं का एक स्कंध, वही उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा है ।

उसके ऊपर तृतीय शून्यवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा से एक प्रदेश अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर सूक्ष्मनिगोदवर्गणा है, सो सूक्ष्म निगोद जीवों का विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म परमाणुओं का एक स्कंधरूप जानना । वहां उत्कृष्ट शून्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । सो जघन्य भेद कैसे पाया जाता है? वह कहते हैं –

जल में, स्थल में और आकाश में जहां वहां एक बंधन में बंधी ऐसी जो आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवी उनमें क्षपितकर्मांश अनंतानंत सूक्ष्म निगोद जीव हैं । उनका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण तीन शरीरों के परमाणुओं का जो एक स्कंध, वही जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा है ।

यहां प्रश्न – बादरनिगोद उत्कृष्ट वर्गणा में पुलवी श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण कही और जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा में पुलवी आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण कही। इसलिये बादरनिगोदवर्गणा के पहले इसको कहना युक्त था, क्योंकि पुलवी के बहुत प्रमाण से परमाणुओं का भी बहुत प्रमाण होता है ?

उसका समाधान – यद्यपि यहां पुलवी कम कही हैं तथापि बादरनिगोदवर्गणा संबंधी निगोद शरीरों से सूक्ष्मनिगोदवर्गणा संबंधी शरीरों का प्रमाण सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग गुणा है, इसलिये वहां जीव भी बहुत हैं । उन जीवों के तीन शरीरों संबंधी परमाणु भी बहुत हैं । इसलिये बादरनिगोदवर्गणा के बाद सूक्ष्मनिगोदवर्गणा कही है। पुनश्च जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट

सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है । वह कैसे पायी जाती है ? वह कहते हैं –

यहां महामत्स्य के शरीर में एक स्कंधरूप आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवी पायी जाती हैं । वहां गुणितकर्मांशिक अनंतानंत जीवों का विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण तीन शरीरों के परमाणुओं का एक स्कंध, वही उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा है ।

उसके ऊपर नभोवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य भेद को जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर महास्कंध है । वहां उत्कृष्ट नभोवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उसको जघन्य में मिलानेपर उत्कृष्ट महास्कंध के परमाणुओं का प्रमाण आता है । ऐसे एक पंक्ति द्वारा तेइस वर्गणा कही ।

आगे जो अर्थ कहा है उसीको संकोचन करके उन वर्गणाओं ही के उत्कृष्ट, जघन्य, मध्य भेदों को और अल्पबहुत्व को छह गाथाओं द्वारा कहते हैं –

परमाणुवग्गणम्मि ण अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि ।
गेज्झमहक्खंधाणं वरमहियं सेसगं गुणियं ।।५९६।।

परमाणुवर्गणायां न अवरोत्कृष्टं च शेषके अस्ति ।
ग्राह्यमहास्कंधानां वरमधिकं शेषकं गुणितम् ।।५९६।।

टीका – परमाणुवर्गणा में जघन्य उत्कृष्ट भेद नहीं है क्योंकि अणु अभेद है। अवशेष बाइस वर्गणाओं में जघन्य उत्कृष्ट भेद पाये जाते हैं । वहां ग्राह्य अर्थात् जीव के ग्रहण करने योग्य ऐसी आहार, तेजस, भाषा, मनः, कार्माण वर्गणा हैं । यहां आहारवर्गणा से आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति ये चार पर्याप्ति होती हैं, तेजसवर्गणा से तेजसशरीर होता है, भाषावर्गणा से वचन होता है, मनोवर्गणा से मन निपजता है, कार्माणवर्गणा से ज्ञानावरणादिक कर्म होते हैं इसलिये इन पांच वर्गणाओं को ग्राह्यवर्गणा कहा है । ये पांच और एक महास्कंध इन छहों वर्गणाओं का उत्कृष्ट तो अपने अपने जघन्य से कुछ अधिक प्रमाण सहित है और

अवशेष सोलह वर्गणाओं का उत्कृष्ट भेद अपने अपने जघन्य को गुणकार से गुणा करनेपर होता है ।

सिद्धाणंतिमभागो पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठट्ठं ।
पल्लासंखेज्जदिमं अंतिमखंधस्स जेट्ठट्ठं ।।५९७।।

सिद्धानंतिमभागः प्रतिभागो ग्राह्याणां ज्येष्ठार्थम् ।
पल्यासंख्येयमंतिमस्कंधस्य ज्येष्ठार्थम् ।।५९७।।

टीका – ग्राह्य पांच वर्गणाओं के उत्कृष्ट भेद के लिये सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र प्रतिभाग है । अपने-अपने जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना जघन्य में मिलानेपर अपना-अपना उत्कृष्ट भेद होता है । तथा अंतिम महास्कंध के उत्कृष्ट भेद के लिये पल्य का असंख्यातवें भागमात्र प्रतिभाग है । महास्कंध के जघन्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण होता है, उतना जघन्य में मिलानेपर उत्कृष्ट महास्कंध होता है ।

संखेज्जासंखेज्जे गुणगारो सो दु होदि हु अणंते ।
चत्तारि अगेज्जेसु वि सिद्धाणमणंतिमो भागो ।।५९८।।

संख्यातासंख्यातायां गुणकारः स तु भवति हि अनंतायाम् ।
चतसृषु अग्रह्यास्वपि सिद्धानामनंतिमो भागः ।।५९८।।

टीका – संख्याताणुवर्गणा और असंख्याताणुवर्गणा में अपने-अपने उत्कृष्ट को अपने-अपने जघन्य का भाग देनेपर जो प्रमाण हो, वही गुणकार जानना । इस गुणकार से जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है । पुनश्च अनंताणुवर्गणा में तथा जीव द्वारा ग्रहण योग्य नहीं है ऐसी चार अग्राह्यवर्गणा में गुणकार सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र है । इससे जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

जीवादोणंतगुणो धुवादितिण्हं असंखभागो दु ।
पल्लस्स तदो तत्तो असंखलोगवहिदो मिच्छो ।।५९९।।

जीवादनंतगुणो ध्रुवादितिसृणामसंख्यभागस्तु ।
पल्यस्य ततस्ततः असंख्यलोकावहिता मिथ्या ।।५९९।।

टीका – पुनश्च ध्रुवादिक तीन वर्गणाओं में जीवराशि से अनंतगुणा गुणकार है । इससे जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट होता है । प्रत्येकशरीरवर्गणा में पल्य का असंख्यातवां भागमात्र गुणकार है । इससे जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट होता है । किस कारण ? वह कहते हैं – प्रत्येकशरीरवर्गणा में जो कार्माणशरीर है उसमें समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीव संबंधी है; इसलिये जघन्य समयप्रबद्ध के परमाणुओं के प्रमाण से इसका प्रमाण पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग गुणा है । उसकी सहनानी बत्तीस का अंक है । इसलिये यहां पल्य के असंख्यातवें भाग का गुणकार कहा है । पुनश्च ध्रुवशून्यवर्गणा में मिथ्यादृष्टि जीवों को असंख्यात लोक का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतना गुणकार है । इससे जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट होता है ।

सेढीसूईपल्लाजगपदरासंखभागगुणगारा ।
अप्पप्पणअवरादो उक्कस्से होंति णियमेण ।।६००।।

श्रेणीसूचीपल्य जगत्प्रतरासंख्यभागगुणकाराः ।
आत्मात्मनोवरादुत्कृष्टे भवंति नियमेन ।।६००।।

टीका – जगत्श्रेणी का असंख्यातवां भाग, सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग, पल्य का असंख्यातवां भाग और जगत्प्रतर का असंख्यातवां भाग ये अनुक्रम से बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा और नभोवर्गणा इनमें गुणकार है । इनसे अपने-अपने जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है । यहां शून्यवर्गणा में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग का गुणकार कहा है, सो सूक्ष्मनिगोदवर्गणा के जघन्य में से एक हीन होनेपर उत्कृष्ट शून्यवर्गणा होती है इसलिये कहा है । सूक्ष्मनिगोदवर्गणा में पल्य का असंख्यातवां भाग गुणकार कहा है; सो उसके उत्कृष्ट का कार्माणशरीर संबंधी समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीव संबंधी है इसलिये कहा है । ऐसी ये तेइस वर्गणा एक पंक्ति अपेक्षा कही।

अब नाना पंक्ति अपेक्षा कहते हैं । नाना पंक्ति क्या है ? जो ये वर्गणा कही, वे वर्गणा लोक में वर्तमान किसी एक काल में कितनी कितनी पायी जाती हैं इस अपेक्षा से कहते हैं –

परमाणुवर्गणा से लेकर सांतरनिरंतरवर्गणा तक पंद्रह वर्गणा समान परमाणुओं के स्कंधरूप हैं, वे लोक में पुद्गल द्रव्यों के प्रमाण के वर्गमूल को अनंतगुणा करनेपर

जो प्रमाण हो उतनी-उतनी पायी जाती हैं । वहां इतना विशेष है कि ऊपर कुछ हीन-हीन पायी जाती हैं । वहां प्रतिभागहार सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र है । वह कहते हैं -

लोक में जितनी अणुवर्गणा पायी जाती हैं, उस प्रमाण को सिद्धराशि के अनंतवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना अणुवर्गणा के प्रमाण में से घटानेपर जो प्रमाण रहता है उतनी दो परमाणुओं के स्कंधरूप संख्याताणुवर्गणा जगत में पायी जाती हैं । इसको सिद्धराशि के अनंतवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना उसी में से घटानेपर जो प्रमाण रहता है, उतनी तीन परमाणुओं के स्कंधरूप संख्याताणुवर्गणा लोक में पायी जाती हैं । इसी अनुक्रम से एक-एक अधिक परमाणु का स्कंध का प्रमाण करते हुये जहां उत्कृष्ट संख्याताणुवर्गणा हुयी वहां जो प्रमाण आया उसको सिद्धराशि के अनंतवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना उसी में से घटानेपर जो अवशेष रहे, उतनी जघन्य असंख्याताणुवर्गणा लोक में पायी जाती हैं । इसको ऐसा ही भाग देकर घटानेपर जो प्रमाण रहे उतनी मध्य असंख्याताणुवर्गणा के प्रथम भेदरूप वर्गणा लोक में पायी जाती हैं । सो ऐसे ही एक-एक अधिक परमाणु के स्कंध का प्रमाण अनुक्रम से सांतरनिरंतरवर्गणा के उत्कृष्ट तक जानना । सामान्य से सर्व जुदी जुदी वर्गणाओं का प्रमाण पुद्गलराशि के वर्गमूल से अनंतगुणा मात्र जानना ।

पुनश्च प्रत्येकशरीरवर्गणा का जघन्य तो पूर्वोक्त अयोगकेवली के अंतिम समय में पाया जाता है सो उत्कृष्टपने चार पायी जाती हैं । तथा उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा स्वयंभूरमण द्वीप के दावानलादि में पायी जाती हैं सो उत्कृष्टपने आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पायी जाती हैं । पुनश्च बादरनिगोदवर्गणा का जघन्य तो पूर्वोक्त क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में पाया जाता है, सो उत्कृष्टपने चार पायी जाती हैं । और बादरनिगोदवर्गणा का उत्कृष्ट महामत्स्यादिक में पाया जाता है, सो उत्कृष्टपने आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पायी जाती हैं । पुनश्च सूक्ष्मनिगोदवर्गणा जघन्य तो वर्तमान काल में जल में, स्थल में वा आकाश में आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पायी जाती हैं और सूक्ष्मनिगोदवर्गणा उत्कृष्ट भी आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पायी जाती हैं । यहां प्रत्येकशरीरवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा इन तीन सचित्त वर्गणाओं के मध्य भेद वर्तमानकाल में असंख्यातलोक प्रमाण पाये जाते हैं।

पुनश्च महास्कंधवर्गणा वर्तमानकाल में जगत में एक ही है । सो भवनवासियों के भवन, देवों के विमान, आठ पृथ्वियां, मेरुगिरि, कुलाचल इत्यादिकों के एक स्कंधरूप है।

यहां प्रश्न – जिन में असंख्यात-असंख्यात योजनों का अंतर पाया जाता है उनका एक स्कंध कैसे संभव है ?

उसका उत्तर – बीच में सूक्ष्म परमाणु हैं, सो वे विमानादिक और सूक्ष्म परमाणु इन सभी का एक बंधान है । इसलिये अंतर नहीं है, एक स्कंध है । ऐसा जो एक स्कंध है, उसी का नाम महास्कंध है ।

हेट्ठिमउक्कस्सं पुण रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु ।
इदि तेवीसवियप्पा पुग्गलदव्वा हु जिणदिट्ठा ।।६०१।।

अधस्तनोत्कृष्टं पुनः रूपाधिकमुपरिमं जघन्यं खलु ।
इति त्रयोविंशतिविकल्पानि पुद्गलद्रव्याणि हि जिनदिष्टानि ।।६०१।।

टीका – तेइस वर्गणाओं में से अणुवर्गणा को छोड़कर शेष वर्गणाओं के नीचे का जो उत्कृष्ट भेद है उसमें एक अधिक होनेपर उसके ऊपर की वर्गणा का जघन्य भेद होता है । ऐसे तेइस वर्गणाभेद से युक्त पुद्गल द्रव्य जिनदेव ने कहे हैं । इनमें से प्रत्येकशरीरवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा और सूक्ष्मनिगोदवर्गणा ये तीन सचित्त हैं, जीव सहित हैं, सो इनका विशेष कहते हैं –

अयोगीकेवली के अंतिम समय में पायी जाती है ऐसी जघन्य प्रत्येकशरीरवर्गणा लोक में होती भी है या नहीं भी होती, यदि होती है तो एक ही होती है, या दो होती हैं, या तीन होती हैं, उत्कृष्ट हो तो चार होती हैं । पुनश्च जघन्य से एक परमाणु अधिक ऐसी मध्य प्रत्येकशरीरवर्गणा, सो लोक में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन या उत्कृष्टपने से चार होती हैं । ऐसे ही एक-एक परमाणु बढ़ाने से इसी अनुक्रम से जब अनंत वर्गणा होगी, तब उसके अनंतर एक परमाणु अधिक वर्गणा, सो लोक में होती है या नहीं होती । यदि होती है तो एक या दो या तीन या चार या उत्कृष्टपने पांच होती हैं । ऐसे एक एक परमाणु बढ़ते हुये अनंतवर्गणा तक पांच ही उत्कृष्ट है । उसके अनंतर जो वर्गणा है, वह होती है या नहीं होती । यदि होती है तो एक या दो या तीन या उत्कृष्ट छह

होती हैं । ऐसे अनंत वर्गणा पर्यंत उत्कृष्ट छह ही होती हैं । पुनश्च इसी अनुक्रम से अनंतअनंत वर्गणा तक उत्कृष्ट सात, आठ, सात, छह, पांच, चार, तीन, दो वर्गणा जगत में समान परमाणुओं के प्रमाणवाली होती हैं । यह यवमध्य प्ररूपणा है । जैसे यव नामक अन्न का मध्य मोटा होता है, वैसे यहां मध्य में वर्गणा आठ कही। पहले या पश्चात् थोड़ी थोड़ी कही । इसलिये इसको यवमध्य प्ररूपणा कहते हैं । सो यह प्ररूपणा मुक्तिगामी भव्य जीवों की अपेक्षा से है । ऐसी *(यहां तक)* प्रत्येकशरीरवर्गणा समान वर्गणा संसारी जीवों के नहीं पायी जाती । यहां से आगे संसारी जीवों के पायी जाती हैं ऐसी प्रत्येकशरीरवर्गणा कहते हैं –

सो ऊपर कथन किया उसके अनंतर, पूर्व के प्रत्येकशरीरवर्गणा से एक परमाणु अधिकतावाली जो प्रत्येकशरीरवर्गणा, सो जगत में होती है या नहीं होती । यदि होती है तो एक या दो या तीन इत्यादि उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती हैं । इसीप्रकार अनंतवर्गणा होनेपर अनंतर जो प्रत्येकशरीरवर्गणा, वह लोक में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण–पूर्व प्रमाण से एक अधिक होती हैं । ऐसी अनंत अनंत वर्गणा होनेपर एक एक अधिक प्रमाण उत्कृष्ट में होता जाय, जहां यवमध्य हो, वहां तक ऐसे जानना। यवमध्य में जितने परमाणुओं के स्कंधरूप प्रत्येकशरीरवर्गणा हुयी, उतने–उतने परमाणुओं के स्कंधरूप प्रत्येकशरीरवर्गणा जगत में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती हैं । यह प्रमाण इससे पूर्वप्रमाण से एक अधिक जानना । ऐसी अनंत वर्गणा होनेपर, अनंतर जो वर्गणा हुयी, वह जगत में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं । सो यह प्रमाण यवमध्य संबंधी पूर्व प्रमाण से एक कम जानना ।

इसप्रकार एक एक परमाणु बढ़ने से एक एक वर्गणा होती है । अनंतअनंत वर्गणा होनेपर उत्कृष्ट में से एक एक घटाना जहां तक उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा होती है वहां तक ऐसे करना । उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा लोक में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं । इसप्रकार प्रत्येकशरीरवर्गणा भव्यसिद्ध, अभव्यसिद्ध इनकी अपेक्षा से कही।

पुनश्च बादरनिगोदवर्गणा का कथन भी प्रत्येकशरीरवर्गणावत् जानना, कुछ विशेष

नहीं है । जैसे प्रत्येकशरीरवर्गणा में अयोगी के अंतिम समय में होनेवाली जघन्य वर्गणा से लेकर भव्यसिद्ध अपेक्षा से कथन किया है, वैसे यहां क्षीणकषायी के अंतिम समय में होनेवाली उसके शरीर के आश्रित जघन्य बादरनिगोदवर्गणा, उसको आदि लेकर भव्यसिद्ध अपेक्षा कथन जानना । सामान्य संसारी अपेक्षा से दोनों जगह समानता होती है ।

अब सूक्ष्मनिगोदवर्गणा का कथन करते हैं - यहां भव्यसिद्ध अपेक्षा तो कथन है नहीं । इसलिये जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा लोक में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं । आगे जैसे संसारी की अपेक्षा से प्रत्येकशरीरवर्गणा का कथन किया, वैसे ही यवमध्य तक अनंतानंत वर्गणा होनेपर उत्कृष्ट में एक एक बढ़ाना । पश्चात् उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा तक एक-एक घटाना । सामान्यपने सर्वत्र उत्कृष्ट का प्रमाण आवली के असंख्यातवें भाग कहते हैं । यहां सर्वत्र संसारी सिद्ध के योग्य ऐसी जो प्रत्येकशरीरवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा उनके यवाकार प्ररूपणा में गुणहानि का गच्छ जीवराशि से अनंतगुणा जानना । नानागुणहानिशलाका का प्रमाण यवमध्य के ऊपर और नीचे आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण जानना ।

भावार्थ – संसारी की अपेक्षा से प्रत्येकशरीरवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा में जो यवमध्य की प्ररूपणा कही वहां लोक में पाये जाने की अपेक्षा से जितने एक-एक परमाणु बढ़नेरूप वर्गणा के भेद हैं, उन भेदों का जो प्रमाण है वह तो द्रव्य है। जिन वर्गणाओं में उत्कृष्ट पाये जाने की अपेक्षा से समानता पायी जाती हैं उनका समूह वह निषेक है, निषेकों का जो प्रमाण वह स्थिति है । एक गुणहानि में निषेकों का जो प्रमाण, वह गुणहानि का गच्छ है । उसका प्रमाण जीवराशि से अनंतगुणा है । यवमध्य के ऊपर और नीचे गुणहानियों का प्रमाण, वह नानागुणहानि है, वह प्रत्येक आवली के असंख्यातवें भागमात्र है । इसतरह द्रव्यादिक का प्रमाण जानकर जैसे निषेकों में द्रव्य प्रमाण लाने का विधान है, वैसे उत्कृष्ट पाये जाने की अपेक्षा से समानरूप जो वर्गणा उनका प्रमाण यवमध्य के ऊपर और नीचे चय घटते क्रम युक्त जानना ।

यहां प्रश्न – यहां तो प्रत्येकशरीरवर्गणा आदि तीन सचित्त वर्गणा के अनंत भेद कहे, एक एक भेदरूप वर्गणा लोक में आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण सामान्यपने कही। परंतु पहले मध्यभेदरूप सचित्त वर्गणा सर्व असंख्यात लोकप्रमाण ही कही, सो

उत्कृष्ट जघन्य बिना सर्व भेद मध्यभेद में आ गये, वहां ऐसा प्रमाण कैसे संभव है?

उसका समाधान – यहां सर्व भेदों में ऐसा कहा है कि होती भी है या नहीं भी होती और यदि होती हैं तो एक या दो इत्यादि उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती हैं । सो नानाकाल अपेक्षा यह कथन है । पुनश्च वहां एक किसी विवक्षित वर्तमानकाल अपेक्षा वर्तमानकाल में सर्व मध्यभेदरूप प्रत्येकशरीरवर्गणा आदि असंख्यात लोकप्रमाण ही पायी जाती हैं । अधिक नहीं पायी जाती । उनमें किसी भेदरूप वर्गणाओं की नास्ति ही है । किसी भेदरूप वर्गणा एक आदि प्रमाणवाली हैं। किसी भेदरूप वर्गणा उत्कृष्ट प्रमाणवाली पायी जाती हैं ऐसा समझना । इसप्रकार तेइस वर्गणाओं का वर्णन किया ।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं ।।६०२।।

पृथ्वी जलं च छाया चतुरिंद्रियविषयकर्मपरमाणवः ।
षड्विधभेदं भणितं पुद्गलद्रव्यं जिनवरैः ।।६०२।।

टीका – पृथ्वी, जल, छाया, नेत्रों को छोड़कर अन्य चार इन्द्रियों का विषय, कार्माण स्कंध और परमाणु ऐसे छह प्रकार के पुद्गल द्रव्य जिनेश्वर देवों ने कहे हैं ।

बादरबादर बादर बादरसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं धरादियं होदि छब्भेयं ।।६०३।।

बादरबादरं बादरं बादरसूक्ष्मं च सूक्ष्मस्थूलं च ।
सूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्मं धरादिकं भवति षड्भेदम् ।।६०३।।

टीका – पृथ्वीरूप पुद्गल द्रव्य बादरबादर है । जो पुद्गल स्कंध छेदने के, भेदने के तथा अन्य जगह ले जाने के योग्य हो उस स्कंध को बादरबादर कहते हैं । पुनश्च जल है वह बादर है । जो छेदने के, भेदने के योग्य न हो, अन्य जगह ले जाने के योग्य हो, वे स्कंध बादर जानने । पुनश्च छाया बादरसूक्ष्म है । जो छेदने के, भेदने के तथा अन्य जगह ले जाने के योग्य न हो, वे स्कंध बादरसूक्ष्म हैं । पुनश्च नेत्र बिना अन्य चार इन्द्रियों के विषय सूक्ष्मस्थूल हैं। पुनश्च कार्माण के

स्कंध सूक्ष्म हैं । जो द्रव्य देशावधि, परमावधि के गोचर *(जानने में आये)* हैं, वे सूक्ष्म हैं। पुनश्च परमाणु सूक्ष्मसूक्ष्म है। जो सर्वावधि के गोचर हैं, वे सूक्ष्मसूक्ष्म हैं।

यहां एक-एक वस्तु का उदाहरण कहा है । सो पृथ्वी, काष्ठ, पाषाण इत्यादि बादरबादर हैं । जल, तेल, दुग्ध आदि बादर हैं । छाया, आतप, चांदनी इत्यादि बादरसूक्ष्म हैं । शब्द गंधादिक सूक्ष्मबादर हैं । जो स्कंध इन्द्रियगम्य नहीं है, देशावधि परमावधिगम्य हो वे स्कंध सूक्ष्म हैं । परमाणु सूक्ष्मसूक्ष्म हैं ऐसे जानना ।

खंधं सयलसमत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी चेव परमाणू ।।६०४।।

स्कंधं सकलसमर्थं तस्य चार्धं भणंति देशमिति ।
अर्द्धार्द्धं च प्रदेशमविभागिनं चैव परमाणुम् ।।६०४।।

टीका - जो सर्व अंशों में सम्पूर्ण हो उसे स्कंध कहते हैं, उसके आधे को देश कहते हैं, उस आधे के आधे को प्रदेश कहते हैं, जिसका भाग न हो उसे परमाणु कहते हैं ।

भावार्थ - विवक्षित स्कंध में सम्पूर्ण स्कंध से लेकर एक परमाणु अधिक आधे तक की तो स्कंध संज्ञा है । आधे से लेकर एक परमाणु अधिक चौथाई *(चतुर्थ भाग)* तक देश संज्ञा है । चौथाई से लेकर दो परमाणुओं के स्कंध तक प्रदेश संज्ञा है । अविभागी की परमाणु संज्ञा है । इति स्थानस्वरूपाधिकारः (स्थानस्वरूप अधिकार समाप्त हुआ) ।

७) फल -

गदिठाणोग्गहकिरियासादणभूदं खु होदि धम्मतियं ।
वत्तणकिरियासाहणभूदो णियमेण कालो दु ।।६०५।।

गतिस्थानावगाहक्रियासाधनभूतं खलु भवति धर्मत्रयम् ।
वर्तनाक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु ।।६०५।।

टीका - क्षेत्र से क्षेत्रांतर को प्राप्त होने के कारण उसे गति कहते हैं, गति के अभावरूप उसे स्थान *(स्थिति)* कहते हैं । अवकाश में रहने को अवगाह कहते

हैं । वहां जैसे मछलियों के गमन करने के साधनभूत जलद्रव्य है वैसे गतिक्रियावान जो जीव, पुद्गल, उनके गतिक्रिया के साधनभूत धर्मद्रव्य है । पुनश्च जैसे पथिक जनों के स्थान करने के साधनभूत छाया है वैसे स्थानक्रियावान जो जीव पुद्गल, उनके स्थानक्रिया के साधनभूत अधर्मद्रव्य है । पुनश्च जैसे वास *(निवास)* करनेवालों के साधनभूत वसतिका है, वैसे अवगाह क्रियावान जीव पुद्गलादिक द्रव्य उनके अवगाहक्रिया के साधनभूत आकाशद्रव्य है ।

यहां प्रश्न – अवगाह क्रियावान तो जीव और पुद्गल हैं । उनको अवकाश देना कहा है, वह युक्त है । परंतु धर्मादिक द्रव्य तो निष्क्रिय हैं, नित्य संबंध के धारक हैं, नवीन नहीं आये, उनको अवकाश देना होता है ऐसे यहां कैसे कहते हो? वह कहो ।

उसका समाधान – यह उपचार से कहते हैं, जैसे गमन का अभाव होते हुये भी सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा आकाश को सर्वगत कहते हैं, वैसे धर्मादिक द्रव्यों के अवगाह क्रिया का अभाव होते हुये भी लोक में सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा से अवगाह का उपचार करते हैं ।

यहां प्रश्न – यदि अवकाश देना आकाश का स्वभाव है, तो वज्रादिक से पाषाणादिक का और भींत इत्यादि से गाय इत्यादि का रोकना कैसे होता है ? वहां रोकना तो देखते हैं । इसलिये आकाश तो वहां भी था परंतु पाषाणादिक को अवगाह नहीं दिया, तब आकाश का अवगाह देना स्वभाव नहीं रहा ?

वहां उत्तर – आकाश तो अवगाह देता है परंतु पहले वहां अवगाह से रहनेवाले वज्रादिक स्थूल हैं, इसलिये परस्पर को रोकते हैं । इसमें आकाश का अवगाह देने का स्वभाव गया नहीं है । क्योंकि वहां ही अनंत सूक्ष्म पुद्गल हैं वे परस्पर अवगाह देते हैं ।

पुनः प्रश्न – यदि ऐसा है तो सूक्ष्म पुद्गलादिकों के भी अवगाहनहेतुत्व स्वभाव आया । आकाश का ही असाधारण लक्षण कैसे कहते हैं ?

वहां उत्तर – सर्व पदार्थों को साधारण अवगाहहेतुत्व इस आकाश ही का असाधारण लक्षण है । अन्य द्रव्य सर्व द्रव्यों को अवगाह देने में समर्थ नहीं है।

यहां प्रश्न – अलोकाकाश तो सर्व द्रव्यों को अवगाह नहीं देता, वहां ऐसा लक्षण कैसे संभव है ?

उसका समाधान – स्वभाव का परित्याग नहीं होता । वहां कोई द्रव्य होता तो अवगाह देता, कोई द्रव्य वहां गमनादि नहीं करते, तो अवगाह किसको दे ? उसके तो अवगाह देने का स्वभाव पाया जाता है ।

पुनश्च सर्व द्रव्यों को वर्तनाक्रिया का साधनभूत नियम से कालद्रव्य है ।

अण्णोण्णुवयारेण य जीवा वट्टंति पुग्गलाणि पुणो ।
देहादीणिव्वत्तणकारणभूदा हु णियमेण ।।६०६।।

अन्योन्योपकारेण च जीवा वर्तन्ते पुद्गलाः पुनः ।
देहादिनिर्वर्तनकारणभूता हि नियमेन ।।६०६।।

टीका – पुनश्च जीवद्रव्य हैं, वे परस्पर उपकार द्वारा प्रवर्तते हैं । जैसे स्वामी तो चाकर को धनादिक देता है और चाकर स्वामी का जैसा हित हो और अहित का निषेध हो वैसे करता है, ऐसे परस्पर उपकार है । पुनश्च आचार्य तो शिष्य को इहलोक परलोक में फल को देनेवाला उपदेश तथा क्रिया का आचरण कराना ऐसे उपकार करते हैं । शिष्य उन आचार्यों की अनुकूलवृत्ति से सेवा करते हैं । ऐसे परस्पर उपकार है। ऐसे ही अन्यत्र भी जानना । पुनश्च चकार शब्द से जीव परस्पर अनुपकार अर्थात् बुरा करना, उसरूप भी प्रवर्तते हैं अथवा उपकार अनुपकार दोनोंरूप नहीं प्रवर्तते हैं । पुनश्च पुद्गल हैं वे देहादिक अर्थात् कर्म, नोकर्म, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास इनके निपजाने का नियम से कारणभूत हैं । ये पुद्गल के उपकार हैं ।

यहां प्रश्न – जिनका आकार देखते हैं ऐसे औदारिकादि शरीरों को पुद्गल कहो, कर्म तो निराकार है, पौद्गलिक नहीं है ।

वहां उत्तर – जैसे गेहू आदि अन्न जलादिक मूर्तिक द्रव्य के संबंध से पकाये जाते हैं वे गेहू आदि पौद्गलिक हैं । वैसे कर्म भी दण्डुका (सोटा), कंटक आदि मूर्तिक द्रव्य के संबंध से उदय अवस्थारूप होकर पाक को प्राप्त होते हैं, इसलिये पौद्गलिक ही हैं ।

वचन दो प्रकार के हैं – १) द्रव्यवचन, २) भाववचन । वहां भाववचन तो

वीर्यांतराय तथा मति-श्रुत आवरण के क्षयोपशम और अंगोपांग नामक नामकर्म के उदय के निमित्त से होते हैं, इसलिये पौद्गलिक हैं । पुद्गल के निमित्त बिना भाववचन होता नहीं । पुनश्च भाववचन के सामर्थ्य का धारक ऐसा क्रियावान जो आत्मा, उससे प्रेरित हुआ पुद्गल वचनरूप परिणमता है, उसे द्रव्यवचन कहते हैं । वह भी पौद्गलिक ही है, क्योंकि वह द्रव्यवचन कर्णेन्द्रिय का विषय है, जो इन्द्रियों का विषय है, वह पुद्गल ही है ।

यहां प्रश्न – कर्ण बिना अन्य इन्द्रियों का विषय क्यों नहीं होता ?

वहां उत्तर – जैसे गंध नासिका ही का विषय है, वह रसनादिक से ग्रहण नहीं होता; वैसे शब्द कर्ण ही का विषय है, अन्य इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण के योग्य नहीं है ।

यहां तर्क – वचन अमूर्तिक है ।

वहां उत्तर – ऐसा कहना भी अयुक्त है क्योंकि वचन मूर्तिक द्वारा ग्रहण किया जाता है तथा मूर्तिक द्रव्य द्वारा रोका जाता है और नष्ट होता है इसलिये मूर्तिक ही है ।

पुनश्च द्रव्य, भाव के भेद से मन भी दो प्रकार का है । वहां भावमन तो लब्धि उपयोगरूप है, सो क्षयोपशमादि पौद्गलादिक निमित्त से होते हैं, इसलिये पौद्गलिक ही हैं । पुनश्च ज्ञानावरण वीर्यांतराय का क्षयोपशम और अंगोपांग नामक नामकर्म का उदय इनके निमित्त से गुण दोष का विचार, स्मरण इत्यादिरूप सन्मुख हुआ जो आत्मा, उसको उपकारी जो पुद्गल, वह मनरूप होकर परिणमता है, इसलिये द्रव्यमन भी पौद्गलिक है ।

यहां कोई कहे कि मन तो एक जुदा ही द्रव्य है रूपादिरूप नहीं परिणमता, अणुमात्र है । वहां आचार्य कहते हैं – उस मन से आत्मा का संबंध है या नहीं? यदि संबंध नहीं है तो आत्मा को उपकारी नहीं होता, इन्द्रियों में प्रधानता को नहीं प्राप्त होता और यदि संबंध है तो, वह तो अणुमात्र है इसलिये एकदेश में उपकार करेगा, अन्य प्रदेशों में कैसे उपकार करता है ?

वहां तार्किक कहता है – अमूर्तिक निष्क्रिय आत्मा का एक अदृष्ट नामक गुण है । वह अदृष्ट जो कर्म उसके वश से उस मन का कुम्हार के चक्रवत् परिभ्रमण

करता है । सो ऐसा कहना भी अयुक्त है । अणुमात्र जो हो, उसके भ्रमण की समर्थता नहीं है । तथा अमूर्तिक निष्क्रिय का अदृष्ट गुण कहा है, वह दूसरों की क्रिया का आरंभ कराने को समर्थ नहीं होता । जैसे पवन स्वयं क्रियावान है, वह स्पर्श द्वारा वनस्पति को चंचल करता है । सो यह तो अणुमात्र तथा निष्क्रिय का गुण वह स्वयं क्रियावान नहीं है तो अन्य को कैसे क्रियावान प्रवर्तता है ? इसलिये मन पौद्गलिक ही है ।

पुनश्च वीर्यांतराय और ज्ञानावरण का क्षयोपशम और अंगोपांग नामक नामकर्म का उदय इनसे संयुक्त जो आत्मा, उसके निकसनेवाला (बाहर निकलनेवाला) जो कंठसंबंधी उच्छ्वासरूप पवन, उसे प्राण कहते हैं । पुनश्च उस पवन द्वारा बाह्य पवन को अभ्यंतर करनेवाला निश्वासरूप पवन, उसे अपान कहते हैं । वे प्राण-अपान जीवितव्य को कारण हैं । इसलिये उपकारी हैं । सो मन और प्राणापान ये मूर्तिक हैं । क्योंकि भय के कारण वज्रपातादिक मूर्तिक, उनसे मन का रुकना देखा जाता है । पुनश्च भय के कारण दुर्गंधादिक से या हस्तादिक से मुँह के आच्छादन से या श्लेष्मादिक से प्राण-अपान का रुकना देखते हैं, इसलिये दोनों मूर्तिक ही हैं । अमूर्तिक होते तो मूर्तिक द्वारा रुकना न होता ।

पुनश्च उसीसे आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है । जैसे कोई काष्ठादिक से उत्पन्न प्रतिबिम्ब (मूर्ति) चेष्टा करता है वहां जानते हैं कि इसमें तो स्वयं की शक्ति नहीं है, चेष्टा करानेवाला कोई पुरुष है । वैसे अचेतन जड़ शरीर में प्राणापानादिक चेष्टा होती है, उस चेष्टा का प्रेरक कोई आत्मद्रव्य अवश्य है । ऐसे आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है ।

पुनश्च सुख, दुःख, जीवित, मरण ये भी पुद्गल द्रव्य ही के उपकार हैं । वहां साता असाता वेदनीय का उदय तो अंतरंग कारण और बाह्य इष्ट-अनिष्ट वस्तु का संयोग इनके निमित्त से जो प्रीतिरूप या आतापरूप होना, वह सुख-दुःख है । पुनश्च आयुकर्म के उदय से पर्याय की स्थिति को धारण करनेवाले जीव के प्राणापान क्रियाविशेष का नाश न होना, उसे जीवित (जीवन) कहते हैं । प्राणापान क्रियाविशेष का उच्छेद होना, उसे मरण कहते हैं । सो ये सुख, दुःख, जीवित, मरण मूर्तिक द्रव्य का निमित्त निकट होनेपर ही होते हैं, इसलिये पौद्गलिक ही हैं ।

पुनश्च पुद्गल है वह मात्र जीव को ही उपकारी नहीं है, अपितु पुद्गल को भी पुद्गल उपकारी है । जैसे कांसी आदि को भस्मी आदि *(कांसे या अन्य धातु के बर्तन भस्म, राख, साबु से मांजे जाते हैं)* और जलादि को कतक फलादि *(जल में कतक फल ड़ालने से मिट्टी नीचे बैठती है ऊपर जल स्वच्छ होता है)* और लोहादि को जलादि उपकारी देखे जाते हैं, ऐसे और भी देखे जाते हैं । पुनश्च औदारिकशरीर नामकर्म, वैक्रियिकशरीर नामकर्म, आहारकशरीर नामकर्म के उदय से आहारवर्गणा से निपजे हुये तीन शरीर हैं और श्वासोच्छ्वास है । तथा तेजसशरीर नामक नामकर्म के उदय से तेजसवर्गणा से निपजा हुआ तेजसशरीर है । तथा कार्माणशरीर नामक नामकर्म के उदय से कार्माणवर्गणा से निपजा हुआ कार्माणशरीर है । तथा स्वर नामक नामकर्म के उदय से भाषावर्गणा से निपजा हुआ वचन है । पुनश्च नोइन्द्रियावरण के क्षयोपशम से युक्त संज्ञी जीव के अंगोपांग नामक नामकर्म के उदय से मनोवर्गणा से निपजा हुआ द्रव्यमन है, ऐसे ये पुद्गल के उपकार हैं ।

इसी अर्थ को दो सूत्रों द्वारा कहते हैं –

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो ।
णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं ।।६०७।।

आहारवर्गणात् त्रीणि शरीराणि भवन्ति उच्छ्वासः ।
निश्वासोऽपि च तेजोवर्गणास्कन्धात्तुतेजोऽङ्गम् ।।६०७।।

टीका – तेइस जाति की वर्गणाओं में आहारवर्गणा से औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तीन शरीर होते हैं और उच्छ्वास निश्वास होता है । तेजसवर्गणा के स्कंधों से तेजसशरीर होता है ।

भासमणवग्गणादो कमेण भाषा मणं च कम्मादो ।
अट्ठविहकम्मदव्वं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।६०८।।

भाषामनोवर्गणातः क्रमेण भाषा मनश्च कार्मणतः ।
अष्टविधकर्मद्रव्यं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।६०८।।

टीका – भाषावर्गणा के स्कंधों से चार प्रकार की भाषा होती है । मनोवर्गणा

के स्कंधों से द्रव्यमन होता है । कार्माणवर्गणा के स्कंधों से आठ प्रकार का कर्म होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है ।

णिद्धतं लुक्खत्तं बंधस्स य कारणं तु एयादी ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतविहा णिद्धलुक्खगुणा ।।६०९।।

स्निग्धत्वं रूक्षत्वं बन्धस्य च कारणं तु एकादयः ।
संख्येयासंख्येयानन्तविधाः स्निग्धरूक्षगुणाः ।।६०९।।

टीका - बाह्य-अभ्यंतर कारण के वश से स्निग्ध पर्याय के प्रकटपने से चिकनास्वरूप होता है, वह स्निग्ध है । उसके भाव को स्निग्धत्व कहते हैं । तथा रूखारूप होता है, वह रूखा है । उसके भाव को रूक्षत्व कहते हैं । सो जल, बकरी का दूध, गाय का दूध, भैंस का दूध, ऊटनी का दूध या घृत इनमें स्निग्धगुण की हीनाधिकता देखी जाती हैं । और धूलि, वालू, रेत या तुच्छ पाषाणादि में रूक्षगुण की हीनाधिकता देखी जाती है । वैसे ही परमाणु में भी स्निग्ध रूक्ष गुण की हीनाधिकता पायी जाती है । वे स्निग्धरूक्ष गुण द्व्यणुकादि स्कंधपर्याय के परिणमन के कारण होते हैं। तथा चकार शब्द से स्कंध के बिछुड़ने के भी कारण होते हैं । स्निग्धरूप दो परमाणुओं का या रूक्षरूप दो परमाणुओं का या एक स्निग्ध और एक रूक्ष परमाणु का परस्पर जुड़नेरूप बंध होनेपर द्व्यणुक स्कंध होता है । ऐसे संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणुओं का स्कंध भी जानना । वहां स्निग्धगुण और रूक्षगुण अंशों की अपेक्षा संख्यात, असंख्यात, अनंत भेदयुक्त हैं ।

एयगुणं तु जहण्णं णिद्धत्तं बिगुणतिगुणसंखेज्जाऽ-
संखेज्जाणंतगुणं होदि तहा रुक्खभावं च ।।६१०।।

एकगुणं तु जघन्यं स्निग्धत्वं द्विगुणत्रिगुणसंख्येयाऽ- ।
संख्येयानन्तगुणं भवति तथा रूक्षभावं च ।।६१०।।

टीका - स्निग्धगुण जो एक गुण है, वह जघन्य है, जिसका एक अंश हो उसको एक गुण कहते हैं । उससे लेकर द्विगुण, त्रिगुण, संख्यातगुण, असंख्यातगुण, अनंतगुणरूप स्निग्धगुण जानना । वैसे ही रूक्षगुण भी जानना । केवलज्ञानगम्य सब से थोड़ा तो स्निग्धत्व रूक्षत्व उसको एक अंश मानकर उस अपेक्षा स्निग्ध रूक्ष गुणों

के अंशों का यहां प्रमाण जानना ।

एवं गुणसंजुत्ता परमाणू आदिवग्गणम्मि ठिया ।
जोग्गदुगाणं बंधे दोण्हं बंधो हवे णियमा ।।६११।।

एवं गुणसंयुक्ताः परमाणव आदिवर्गणायां स्थिताः ।
योग्यद्विकयोः बन्धे द्वयोर्बन्धो भवेन्नियमात् ।।६११।।

टीका – ऐसे स्निग्ध रूक्ष गुणों से संयुक्त परमाणु प्रथम अणुवर्गणा में रहते हैं। सो यथायोग्य दो परमाणुओं के बंध स्थान में उन्हीं दो परमाणुओं का बंध होता है।

नियम से स्निग्ध-रूक्ष गुण के निमित्त से सर्वत्र बंध होता है । कुछ विशेष नहीं है ऐसा कोई जानेगा, इसलिये जहां बंध होने योग्य नहीं है ऐसे निषेधपूर्वक जहां बंध होने योग्य है उस विधि को कहते हैं –

णिद्धणिद्धा ण बज्झंति रुक्खरुक्खा य पोग्गला ।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ।।६१२।।

स्निग्धस्निग्धा न बध्यन्ते रूक्षरूक्षाश्च पुद्गलाः ।
स्निग्धरूक्षाश्च बध्यन्ते रूप्यरूपिणश्च पुद्गलाः ।।६१२।।

टीका – स्निग्धगुण युक्त पुद्गलों से स्निग्धगुण युक्त पुद्गल बंधते नहीं हैं और रूक्षगुण युक्त पुद्गलों से रूक्षगुण युक्त पुद्गल बंधते नहीं हैं – यह कथन सामान्य है, बंध भी होता है, उसका विशेष आगे कहेंगे । पुनश्च स्निग्धगुण युक्त पुद्गलों से रूक्षगुण युक्त पुद्गल बंधते हैं । उन पुद्गलों की दो संज्ञा हैं – एक रूपी, एक अरूपी ।

उन संज्ञाओं को कहते हैं –

णिद्धिदरोलीमज्झे विसरिसजादिस्स समगुणं एक्कं ।
रूवि त्ति होदि सण्णा सेसाणं ता अरूवि त्ति ।।६१३।।

स्निग्धेतरावलीमध्ये विसदृशजातेः समगुण एकः ।
रूपीति भवति संज्ञा शेषाणां ते अरूपिण इति ।।६१३।।

टीका – स्निग्ध-रूक्ष गुणों की पंक्ति विसदृश जाति है अर्थात् स्निग्ध की और रूक्ष की परस्पर विसदृश जाति है, उनमें जो कोई एक समान गुण हो उसको रूपी ऐसी संज्ञा द्वारा कहते हैं और समान गुण बिना अवशेष रहे उनको अरूपी ऐसी संज्ञा द्वारा कहते हैं । उसी को उदाहरण द्वारा कहते हैं –

दोगुणणिद्धाणुस्स य दोगुणलुक्खाणुगं हवे रूवी ।
इगितिगुणादि अरूवी रुक्खस्स वि तं व इदि जाणे ।।६१४।।

द्विगुणस्निग्धाणोश्च द्विगुणरूक्षाणुको भवेत् रूपी ।
एकत्रिगुणादिः अरूपी रूक्षस्यापि तद् व इति जानीहि ।।६१४।।

टीका – दूसरा है गुण जिसके या दो हैं गुण जिसके ऐसा जो द्विगुण स्निग्ध परमाणु उसके लिये द्विगुण रूक्ष परमाणु रूपी कहलाता है और अवशेष एक, तीन, चार इत्यादि गुणधारक परमाणु अरूपी कहलाते हैं । ऐसे ही द्विगुण रूक्षाणु के लिये द्विगुण स्निग्धाणु रूपी कहलाता है और अवशेष एक, तीन इत्यादि गुणधारक परमाणु अरूपी कहलाते हैं ।

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण ।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ।।६१५।।

स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकेन रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकेन ।
स्निग्धस्य रूक्षेण भवेद्बन्धो जघन्यवर्ज्ये विषमे समे वा ।।६१५।।

टीका – स्निग्ध अणु का अपने से दो गुण अधिक स्निग्ध अणु के साथ बंध होता है । रूक्ष अणु का अपने से दो गुण अधिक रूक्ष अणु के साथ बंध होता है । स्निग्ध अणु का अपने से दो गुण अधिक रूक्ष अणु के साथ बंध होता है । वहां एक गुण युक्त जघन्य स्निग्ध अणु वा रूक्ष अणु का तीन गुण युक्त परमाणु के साथ बंध नहीं होता । यद्यपि यहां दो अंश अधिक हैं तथापि एक अंश युक्त परमाणु बंधने योग्य नहीं हैं, इसलिये बंध नहीं होता । स्निग्ध और रूक्ष परमाणुओं का समधारा में या विषमधारा में दो अधिक अंश होनेपर बंध होता है । वहां दो, चार, छह, आठ इत्यादि दो दो बढ़ते अंश जहां हो वहां समधारा में कहते हैं तथा तीन, पांच, सात, नौ इत्यादि दो दो बढ़ते अंश जहां हो वहां विषमधारा में कहते

हैं । सो समधारा में दो अंश परमाणु और चार अंश परमाणु का बंध होता है। चार अंश परमाणु और छह अंश परमाणु का बंध होता है, इत्यादि दो अंश अधिक होनेपर बंध होता है । पुनश्च विषमधारा में तीन अंश परमाणु का पांच अंश परमाणु के साथ बंध होता है, पांच अंश परमाणु का सात अंश परमाणु के साथ बंध होता है । ऐसे दो अंश अधिक होनेपर बंध होता है । बंध होने का अर्थ है कि एक स्कंधरूप होते हैं । पुनश्च समान गुण के धारक ऐसे जो रूपी परमाणु उनका परस्पर बंध नहीं है । जैसे दो अंश एक के भी हो और दो अंश दूसरे के भी हो, तो उनका बंध नहीं होता । पुनश्च समगुणधारक परमाणु और विषमगुणधारक परमाणु परस्पर बंधते नहीं है । जैसे दो अंश युक्त परमाणु का पंच अंशरूप परमाणु के साथ बंध नहीं होता । क्योंकि यहां दो अधिक अंशों का अभाव है ।

णिद्धिदरे समविसमा दोत्तिगआदी दुउत्तरा होंति ।
उभये वि य समविसमा सरिसिदरा होंति पत्तेयं ।।६१६।।

स्निग्धेतरयोः समविषमा द्वित्र्यादयः द्व्युत्तरा भवन्ति ।
उभये पि च समविषमा सदृशतरे भवन्ति प्रत्येकम् ।।६१६।।

टीका – स्निग्ध रूक्ष में सम पंक्ति में दो से लेकर दो-दो से बढ़ते हुये गुण जानना जैसे दो, चार, छह, आठ इत्यादि जानना । और विषम पंक्ति में तीन से लेकर दो दो से बढ़ते हुये जानना । तीन, पांच, सात, नौ इत्यादि जानना । वे सम और विषम रूपी भी होते हैं, अरूपी भी होते हैं । जहां दोनों के समान गुण होते हैं वे रूपी तथा जहां समान गुण न हो वे अरूपी कहलाते हैं । जैसे स्निग्ध रूक्ष की सम पंक्ति में दो गुण (स्निग्ध) के लिये दो गुण (रूक्ष के) रूपी हैं, चार गुण के लिये चार गुण रूपी हैं । छह गुण के लिये छह गुण रूपी हैं। इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनंतगुणा पर्यंत जानना । पुनश्च दो गुण के लिये दो गुण छोड़कर एक, तीन, चार, पांच इत्यादि अरूपी हैं ।

भावार्थ – एक परमाणु दो गुण धारक है और दूसरा परमाणु भी दो गुण धारक है, तो वहां उनको परस्पर रूपी कहते हैं । तथा हीनाधिक गुणधारक परमाणु को अरूपी ऐसी संज्ञा कहते हैं । ऐसा ही चार, छह में भी जानना । पुनश्च विषम पंक्ति में तीन गुण के लिये तीन गुण, पांच गुण के लिये पांच गुण इत्यादि संख्यात,

असंख्यात, अनंत तक समान गुणधारक परमाणु परस्पर रूपी हैं । अवशेष हीनाधिक गुणधारक हैं, वे परस्पर अरूपी हैं, ऐसे संज्ञा द्वारा कहते हैं । सो सम और विषम दोनों ही पंक्तियों में समान गुणधारक रूपी परमाणुओं का परस्पर बंध नहीं होता । तत्त्वार्थसूत्र (अ.५ सूत्र३५) में भी कहा है - **'गुणसाम्ये सदृशानां'** । इसका अर्थ यह है कि गुणों की समानता होनेपर सदृश परमाणुओं का परस्पर बंध नहीं होता। अरूपी परमाणुओं का यथोचित स्वस्थान और परस्थान में बंध होता है । स्निग्ध और स्निग्ध का तथा रूक्ष और रूक्ष का बंध, उसे स्वस्थान बंध कहते हैं । स्निग्ध और रूक्ष का बंध हो तो उसे परस्थान बंध कहते हैं ।

आगे इसी अर्थ को अन्य प्रकार से कहते हैं -

दोत्तिगपभवदुउत्तरगदेसुणंतरदुगाण बंधो दु ।
णिद्धे लुक्खे वि तहा वि जहण्णुभये वि सव्वत्थ ।।६१७।।

द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरगतेष्वनन्तरद्विकयोः बन्धस्तु ।
स्निग्धे रूक्षेऽपि तथापि जघन्योभयेऽपि सर्वत्र ।।६१७।।

टीका - स्निग्ध और रूक्ष में सम पंक्ति में दो से लेकर दो दो बढ़ते अंश तथा विषम पंक्ति में तीन से लेकर दो दो बढ़ते अंश क्रम से पाये जाते हैं । वहां अनंतर द्विक का बंध होता है । कैसे ? स्निग्ध के चार अंश या रूक्ष के चार अंशवाले पुद्गल का दो अंशवाले रूक्ष पुद्गल के साथ बंध होता है । स्निग्ध के या रूक्ष के पांच अंशवाले पुद्गल का तीन अंशवाले स्निग्ध परमाणु के साथ बंध होता है । ऐसे दो अधिक होनेपर बंध जानना । परंतु एक अंशरूप जघन्य गुणवाले में बंध नहीं होता, अन्यत्र स्निग्ध रूक्ष में सर्वत्र बंध जानना ।

णिद्धिदरवरगुणाणू सपरट्ठाणे वि णेदि बंधट्ठं ।
बहिरंतरंगहेदुहि गुणंतरं संगदे एदि ।।६१८।।

स्निग्धेतरावरगुणाणुः स्वपरस्थानेऽपि नैति बंधार्थम् ।
बहिरंतरंगहेतुभिर्गुणांतरं संगते एति ।।६१८।।

टीका - जघन्य एक गुणयुक्त स्निग्ध या रूक्ष परमाणु स्वस्थान या परस्थान में बंध के लिये योग्य नहीं है । परंतु वही परमाणु यदि बाह्य अभ्यंतर कारण से

दो आदि अन्य अंशों को प्राप्त हो जाय तो बंध योग्य होता है । तत्त्वार्थसूत्र में भी कहा है, **'न जघन्यगुणानां'** उसका अर्थ यह है कि जघन्य गुणधारक पुद्गलों का परस्पर बंध नहीं होता ।

णिद्धिदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बंधम्मि ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं ।।६१९।।

स्निग्धेतरगुणा अधिका हीनं परिणामयंति बंधे ।
संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशानां स्कंधानाम् ।।६१९।।

टीका – संख्यात, असंख्यात, अनंत प्रदेशों के स्कंधों में स्निग्धगुणस्कंध या रूक्षगुणस्कंध जो दो गुण अधिक होते हैं, वे बंध के होते हुये हीन स्कंध को परिणमाते हैं । जैसे दो स्कंध हैं एक स्कंध में स्निग्ध या रूक्ष के पचास अंश हैं और एक में बावन अंश हैं और उन दोनों स्कंधों का एक स्कंध हुआ तो वहां पचास अंशवाले को बावन अंशरूप परिणमाता है । ऐसे सर्वत्र जानना । तत्त्वार्थसूत्र (अ.५ सू.३७) में भी कहा है – **'बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च'** । इसका अर्थ यह है कि बंध होनेपर जो अधिक अंश है वे हीन अंशों को अपनेरूप परिणमानेवाले हैं । इति फलाधिकारः (फल अधिकार समाप्त हुआ) ।

ऐसे सात अधिकारों द्वारा षट्द्रव्य कहे ।

आगे पंचास्तिकाय को कहते हैं –

दव्वं छक्कमकालं पंचत्थीकायसण्णिदं होदि ।
काले पदेशपचयो जम्हा णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं ।।६२०।।

द्रव्यं षट्कमकालं पंचास्तिकायसंज्ञितं भवति ।
काले प्रदेशप्रचयो यस्मात् नास्तीति निर्दिष्टम् ।।६२०।।

टीका – पहले जो छह द्रव्य कहे, वे **अकालं** अर्थात् काल द्रव्य रहित पंचास्तिकाय नाम पाते हैं । क्योंकि काल के प्रदेशप्रचय नहीं है, काल एक प्रदेशमात्र ही है । तथा पुद्गलवत् परस्पर मिलते नहीं हैं इसलिये काल के कायपना नहीं है। जो द्रव्य प्रदेशों के प्रचय अर्थात् समूह से युक्त होते हैं, वे अस्तिकाय हैं, ऐसा परमागम में

कहा है ।

आगे नौ पदार्थों को कहते हैं -

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं ।
आसव संवर णिज्जर बंधा मोक्खो य होंति त्ति ।।६२१।।

नव च पदार्था जीवाजीवाः तेषां च पुण्यपापद्विकम् ।
आस्रवसंवरनिर्जराबंधा मोक्षश्च भवंतीति ।।६२१।।

टीका - जीव और अजीव ये तो दो मूलपदार्थ और उन्हीं के पुण्य और पाप ये दो पदार्थ हैं । और पुण्य-पाप ही के आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये पांच पदार्थ; ऐसे सर्व मिले हुये ये नौ पदार्थ हैं । पदार्थ शब्द सर्वत्र लगाना। जीवपदार्थ, अजीवपदार्थ इत्यादि जानना ।

जीवदुगं उत्तट्ठं जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा ।
वदसहिदा वि य पावा तव्विवरीया हवंति त्ति ।।६२२।।

जीवद्विकमुक्तार्थं जीवाः पुण्या हि सम्यक्त्वगुणसहिताः ।
व्रतसहिता अपि च पापास्तद्विपरीता भवंति ।।६२२।।

टीका - जीवपदार्थ और अजीवपदार्थ तो पहले जीवसमास अधिकार में और यहां षट्द्रव्य अधिकार में कहे हैं । जो सम्यक्त्व गुण युक्त हो और व्रत युक्त हो, वे पुण्य जीव हैं । तथा इनसे विपरीत सम्यक्त्व, व्रत रहित जो जीव, वे पाप जीव हैं, ऐसा नियम से जानना ।

वहां गुणस्थानों में जीवों की संख्या कहते हैं - उनमें मिथ्यादृष्टि और सासादन ये तो पाप जीव हैं, ऐसा कहते हैं ।

मिच्छाइट्ठी पावा णंताणंत य सासणगुणा वि ।
पल्लासंखेज्जदिमा अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा ।।६२३।।

मिथ्यादृष्टयः पापा अनंतानंतश्च सासनगुणा अपि ।
पल्यासंख्येया अनन्यतरोदयमिथ्यात्वगुणाः ।।६२३।।

टीका – मिथ्यादृष्टि पापी जीव हैं, वे अनंतानंत हैं । क्योंकि संसारीराशि में से अन्य गुणस्थानवालों का प्रमाण घटानेपर मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण होता है। सासादन गुणस्थानवाले भी पाप जीव हैं, क्योंकि अनंतानुबंधी चौकड़ी में से किसी एक प्रकृति के उदय से मिथ्यात्व सदृश गुण प्राप्त होते हैं । वे सासादनवाले जीव पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य ।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं ।।६२४।।

मिथ्याः श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारनंताश्च ।
पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणम् ।।६२४।।

टीका – मिथ्यादृष्टि किंचित् कम संसारीराशि प्रमाण हैं, इसलिये अनंतानंत हैं। देशसंयत गुणस्थानवाले जीव तेरह कोडि मनुष्यों से अधिक तिर्यंच पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । यहां अन्य गुणस्थानों के कथन की अपेक्षा पल्य को तीन बार असंख्यात और एक बार संख्यात का भाग जानना । *(सामान्य कथन पल्य का असंख्यातवां भाग करनेपर विशेष से उनका अल्पबहुत्व जानने के लिये यह भागहार बताया है ।)* सासादन गुणस्थानवर्ती जीव बावन कोडि मनुष्यों से अधिक इतर तीन गति के जीव, जो देशसंयमी तिर्यंचों से असंख्यातगुणे जानना । यहां पल्य को दो बार असंख्यात और एक बार संख्यात का भाग जानना । मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव एक सौ चार कोडि मनुष्यों से अधिक इतर तीन गति के जीव, वे सासादनवालों से संख्यातगुणे जानना । यहां पल्य को दो बार असंख्यात का भाग जानना । अविरत गुणस्थानवर्ती जीव सात सौ कोडि मनुष्यों से अधिक इतर तीन गति के जीव, वे मिश्रवालों से असंख्यातगुणे जानना । यहां पल्य को एक बार असंख्यात का भाग जानना ।

तिरधियसयणवणउदी छण्णउदी अप्पमत्त बे कोडी ।
पंचेव य तेणउदी णवट्ठबिसयच्छउत्तरं पमदे ।।६२५।।

त्र्यधिकशतनवनवतिः षण्णवतिः अप्रमत्ते द्वि कोटी ।
पंचैव च त्रिनवतिः नवाष्टद्विशतषडुत्तरं प्रमत्ते ।।६२५।।

टीका – प्रमत्त गुणस्थान में जीव पांच कोडि तिरानबे लाख अट्ठानबे हजार

दो सौ छह (५९३९८२०६) हैं । अप्रमत्त गुणस्थान में जीव दो कोडि छानबे लाख निन्यानबे हजार एक सौ तीन (२९६९९१०३) हैं । गाथा में पहले अप्रमत्त की संख्या कहकर प्रमत्त की कही है, सो छंद मिलने के लिये कही है ।

तिसयं भणंति केई चउरुत्तरमत्थपंचयं केई ।
उवसामगपरिमाणं खवगाणं जाण तद्दुगुणं ।।६२६।।

त्रिशतं भणंति केचित् चतुरुत्तमस्तपंचकं केचित् ।
उपशमकपरिमाणं क्षपकाणां जानीहि तद्द्विगुणम् ।।६२६।।

टीका – उपशमश्रेणीवाले आठवें, नौवें, दसवें, ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीवोंका प्रमाण कोई आचार्य तीन सौ कहते हैं, कोई तीन सौ चार कहते हैं, कोई पांच कम और चार अधिक तीन सौ कहते हैं उसके एक कम तीन सौ हुये । आठवें, नौवें, दसवें, बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षपक जीवों का प्रमाण उपशमकवालों से दुगुणा है ऐसा हे शिष्य ! तू जान ।

यहां तीन सौ चार उपशम श्रेणीवाले जीवों की संख्या का निरंतर आठ समयों में विभाग करते हैं –

सोलसयं चउवीसं तीसं छत्तीस तह य बादालं ।
अडदालं चउवण्णं चउवण्णं होंति उवसमगे ।।६२७।।

षोडशकं चतुर्विंशतिः त्रिंशत् षट्त्रिंशत तथा च द्वाचत्वारिंशत् ।
अष्टचत्वारिंशत् चतुःपंचाशत् चतुःपंचाशत् भवंति उपशमके ।।६२७।।

टीका – बीच में अंतराल न पडे और उपशम श्रेणी को जीव मांडे तो आठ समयों में उत्कृष्टपने इतने जीव उपशम श्रेणी मांडते हैं, पहले समय से लेकर आठवें समय तक अनुक्रम से सोलह, चौबीस, तीस, छत्तीस, बयालीस, अड़तालीस, चौवन, चौवन जीव निरंतर आठ समयों में होते हैं (१६,२४,३०,३६,४२,४८,५४,५४)।

बत्तीसं अडदालं सट्ठी बावत्तरी य चुलसीदी ।
छण्णउदी अट्ठुत्तरसयमट्ठुत्तरसयं च खवगेसु ।।६२८।।

द्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशत् षष्टिः द्वासप्ततिश्च चतुरशीतिः ।
षण्णवतिः अष्टोत्तरशतमष्टोत्तरशतं च क्षपकेषु ।।६२८।।

टीका – पुनश्च निरंतर आठ समयों में क्षपक श्रेणी मांडनेवाले जीव उपशम श्रेणीवालों से दुगुणे जानना । वहां पहले समय से लेकर अनुक्रम से बत्तीस, अड़तालीस, साठ, बहत्तर, चौरासी, छानबे, एक सौ आठ, एक सौ आठ (३२,४८,६०,७२,८४,९६,१०८,१०८) जीव निरंतर आठ समयों में होते हैं । इसी संख्या को हीनाधिक को बराबर करके पहले चौंतीस मांडते हैं, पश्चात् आठ समयों तक बारह बारह अधिक मांडते हैं । वहां आदि चौंतीस (३४), उत्तर (चय) बारह (१२), गच्छ आठ (८) इसका **'पदमेगेण विहीणं'** इत्यादि सूत्र से जोड़ दीजिये । यहां गच्छ आठ उसमें एक घटानेपर सात रहे, दो का भाग देनेपर साढ़े तीन हुये, उत्तर से गुणा करनेपर बयालीस हुये, आदि से युक्त करनेपर छिहत्तर हुये, गच्छ से गुणा करनेपर छह सौ आठ हुये । सो निरंतर आठ समयों में क्षपक श्रेणी मांडकर इकठ्ठे हुये जीवों का प्रमाण छह सौ आठ जानना। उपशमकों में आदि सत्रह (१७), उत्तर छह (६), गच्छ आठ (८), जोड़ देनेपर तीन सौ चार हुये, वह प्रमाण जानना ।

अट्ठेव सयसहस्सा अट्ठाणउदी तहा सहस्साणं ।
संखा जोगिजिणाणं पंचसयबिउत्तरं वंदे ।।६२९।।

अष्टैव शतसहस्राणि अष्टानवतिस्तथा सहस्राणाम् ।
संख्या योगिजिनानां पञ्चशतद्व्युत्तरं वन्दे ।।६२९।।

टीका – सयोगकेवली जिनों की संख्या आठ लाख अट्ठानबे हजार पांच सौ दो (८९८५०२) है । उनको मैं सदाकाल वन्दन करता हूँ । यहां निरंतर आठ समयों में इकठ्ठे हुये सयोगि जिन अन्य आचार्य अपेक्षा सिद्धांत में ऐसे कहे हैं – **छसु सुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययंति दोसु समयेसु दो दो जीवा केवलमुप्पाययंति एवमट्ठसमयेसु संचिदजीवा बावीसा हवंति ।१।**

इसका अर्थ – छह शुद्ध समयों में तीन तीन जीव केवलज्ञान को उपजाते हैं, दो समयों में दो दो जीव केवलज्ञान उपजाते हैं ऐसे आठ समयों में इकठ्ठे हुये जीव बाइस होते हैं ।

भावार्थ – केवलज्ञान उपजने का छह महिना का अंतराल हो, तब बीच में अंतराल न पड़े ऐसे निरंतर आठ समयों में बाइस जीव केवलज्ञान उपजाते हैं ।

सो यहां विशेष कथन में छह त्रैराशिक होते हैं ।

छह त्रैराशिक का यंत्र

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धप्रमाण
केवली २२	काल मास ६, समय ८	केवली ८९८५०२	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा
काल मास ६, समय ८	समय ८	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा	समय ३२६७२८
समय ८	केवली २२	समय ३२६७२८	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ४४	समय ३२६७२८/२ आधा	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ८८	समय ३२६७२८/४ चौथाई	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली १७६	समय ३२६७२८ ह्न८ (आठवां) भाग	केवली ८९८५०२

वहां बाइस केवलज्ञानी आठ समय अधिक छह मास में होते हैं तो आठ लाख अट्ठानबे हजार पांच सौ दो केवलज्ञानी कितने काल में होते हैं ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर चालीस हजार आठ सौ इकतालीस को छह महिने आठ समयों से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना काल का प्रमाण आता है । छह महिने आठ समय में निरंतर केवलज्ञान उपजने के आठ समय हैं । तो पूर्वोक्त काल प्रमाण में कितने समय हैं? ऐसा त्रैराशिक करनेपर तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अट्ठाइस समय आते हैं। आठ समयों में आचार्यों के मतों की अपेक्षा बाइस या चवालीस या अट्ठासी या एक सौ छिहत्तर केवलज्ञान उपजायें, तो पूर्वोक्त समयों के प्रमाण में या उससे आधे में या चौथाई में या आठवें भाग में कितने केवलज्ञान उपजायेंगे, ऐसे चार प्रकार

से त्रैराशिक करनेपर केवलज्ञानियों का प्रमाण आठ लाख अट्ठानबे हजार पांच सौ दो आता है, ऐसा जानना ।

आगे एक समय में युगपत् होनेवाली ऐसी क्षपक और उपशमक जीवों की विशेष संख्या तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं –

होंति खवा इगिसमये बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य ।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ।।६३०।।

पत्तेयबुद्धतित्थयरत्थिणउंसयमणोहिणाणजुदा ।
दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो ।।६३१।।

जेट्ठावरबहुमज्झिमओगाहणगा दु चारि अट्ठेव ।
जुगवं हवंति खवगा उवसमगा अद्धमेदेसिं ।।६३२।।विसेसयं।

भवन्ति क्षपका एकसमये बोधितबुद्धाश्च पुरुषवेदाश्च ।
उत्कृष्टेनाष्टोत्तरशतप्रमाः स्वर्गतश्च च्युताः ।।६३०।।

प्रत्येकबुद्धतीर्थंकरस्त्रीनपुंसकमनोऽवधिज्ञानयुताः ।
दशषट्कविंशतिदशविंशत्यष्टाविंशो यथाक्रमशः ।।६३१।।

ज्येष्ठावरबहुमध्यामावगाहा द्वौ चत्वारः अष्टैव ।
युगपद् भवन्ति क्षपका उपशमका अर्द्धमेतेषाम् ।।६३२।। विशेषकम्।

टीका – युगपत् एक समय में क्षपक श्रेणीवाले जीव उत्कृष्टता से निम्न प्रकार से पाये जाते हैं । बोधितबुद्ध तो एक सौ आठ, पुरुषवेदी एक सौ आठ, स्वर्ग से चयकर मनुष्य होकर क्षपक हुये हैं ऐसे एक सौ आठ, प्रत्येकबुद्धिऋद्धि के धारक दस, तीर्थंकर छह, स्त्रीवेदी बीस, नपुंसकवेदी दस, मनःपर्ययज्ञानी बीस, अवधिज्ञानी अट्ठाइस, मुक्त होनेयोग्य शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना के धारक दो, जघन्य अवगाहना के धारक चार, सर्व अवगाहना के मध्यवर्ती ऐसी अवगाहना के धारक आठ, ऐसे ये सर्व मिलकर चार सौ बत्तीस हुये । उपशमक इनके आधे सर्व पाये जाते हैं, इसलिये सब मिलकर दो सौ सोलह हुये । पहले गुणस्थानों में इकट्ठे हुये जीवों की संख्या कही थी, यहां

ऐसा कहा है कि यदि श्रेणी में युगपत् उत्कृष्ट हो तो पूर्वोक्त जीव पूर्वोक्त प्रमाण में होते हैं, अधिक नहीं होते ।

आगे सर्व संयमी जीवों की संख्या कहते हैं -

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे ।
अंजलिमौलियहत्थो तियरणसुद्धे णमंसामि ।।६३३।।

सप्तादय अष्टान्ताः षण्णवमध्याश्च संयताः सर्वे ।
अंजलिमौलिकहस्तस्त्रिकरणशुद्ध्या नमस्यामि ।।६३३।।

टीका - आदि में सात का अंक, अंत में आठ का अंक और मध्य में छह बार नौ के अंक ८९९९९९७ ऐसे लिखकर हुयी तीन कम नौ कोडि संख्या, उसप्रमाण जो संयमी छठवें गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक हैं, उनको अंजुलि द्वारा हाथ मस्तक को लगाते हुये मन, वचन, कायरूप त्रिकरण शुद्धता से मैं नमस्कार करता हूँ । वहां प्रमत्तवाले ५९३९८२०६, अप्रमत्तवाले २९६९९१०३, चारों गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवाले ११९६, चारों गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणीवाले २३९२, सयोगि जिन ८९८५०२ सब मिलकर जो ८९९९९३९९ हुये, उन्हें तीन कम नौ कोडि में से घटानेपर अवशेष पांच सौ अट्ठानबे रहे, वे अयोगिजिन जानना ।

आगे चार गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र, अविरत गुणस्थानवर्ती उनकी संख्या का साधक पल्य के भागहार का विशेष कहते हैं - जिसका भाग देते हैं उसको भागहार कहते हैं, सो आगे जो जो भागहार का प्रमाण कहते हैं उस-उसका पल्य को भाग देनेपर जो जो प्रमाण आता है उतना उतना वहां जीवों का प्रमाण जानना । जहां भागहार का प्रमाण थोड़ा हो वहां जीवों का प्रमाण बहुत जानना । जहां भागहार का प्रमाण बहुत हो वहां जीवों का प्रमाण थोड़ा जानना । जैसे एक हजार को पांच का भाग देनेपर दो सौ आते हैं, दो सौ का भाग देनेपर पांच ही आते हैं, ऐसे जानना ।

सो अब भागहार कहते हैं -

ओघासंजदमिस्सयसासणसम्माण भागहारा जे ।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते ।।६३४।।

देवाणं अवहारा होंति असंखेण ताणी अवहरिय ।
तत्थेव य पक्खित्ते सोहम्मीसाण अवहारा ।।६३५।।जुम्मं।

ओघा असंयतमिश्रकसासनसमीचां भागहारा ये ।
रूपोनावलिकासंख्यातेनेह भक्त्वा तत्र निक्षिप्ते ।।६३४।।

देवानामवहारा भवंति असंख्येन तानवहृत्य ।
तत्रैव च प्रक्षिप्ते सौधर्मैशानावहाराः ।।६३५।।युग्मं।

टीका – गुणस्थान संख्या में पहले असंयत, मिश्र, सासादन की संख्या में पल्य का जो भागहार कहा था, उनको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आये उतना उतना उन भागहारों में मिलानेपर देवगति में भागहार होता है । वहां पहले असंयत गुणस्थान में भागहार का प्रमाण एक बार असंख्यात कहा था उसको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतने उस भागहार में मिलानेपर जो प्रमाण हो उतना देवगति संबंधी असंयत गुणस्थान में भागहार जानना । इस भागहार का भाग पल्य को देनेपर जो प्रमाण हो, उतने देवगति में असंयत गुणस्थानवर्ती जीव हैं । ऐसे ही आगे भी पल्य के भागहार जानना ।

पुनश्च मिश्र में दो बार असंख्यातरूप और सासादन में दो बार असंख्यात और एक बार संख्यातरूप पहले जो भागहार का प्रमाण कहा था उसको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आये, उतना उतना वहां मिलानेपर देवगति संबंधी मिश्र में और सासादन में भागहार का प्रमाण आता है ।

पुनश्च देवगति संबंधी असंयत, मिश्र और सासादन में जो जो भागहार का प्रमाण कहा, उस उसको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो जो प्रमाण आता है उतना उतना उस उस भागहार में मिलानेपर जो जो प्रमाण होता है, वह वह सौधर्म-ईशान संबंधी अविरत, मिश्र और सासादन में भागहार जानना । जो देवगति संबंधी अविरत में भागहार कहा था उसको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण होता है, उतना उस भागहार में मिलानेपर सौधर्म-ईशान स्वर्ग संबंधी असंयत में भागहार होता है । इसीप्रकार मिश्र में और सासादन में भागहार जानना ।

सोहम्मेसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे ।
उवरि असंजदमिस्सयसासणसम्माण अवहारा ।।६३६।।

सौधर्मेशानहारमसंख्येन च संख्यरूपसंगुणिते ।
उपरि असंयतमिश्रकसासनसमीचामवहाराः ।।६३६।।

टीका - उसके ऊपर सनत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग है । वहां असंयत में सौधर्म-ईशान संबंधी सासादन के भागहार से असंख्यात गुणा भागहार जानना । इस असंयत के भागहार से चकार से असंख्यातगुणा मिश्र में भागहार जानना । इससे संख्यातगुणा सासादन में भागहार जानना ।

आगे गुणा करने के अनुक्रम की व्याप्ति दिखाते हैं -

सोहम्मादासारं जोइसिवणभवणतिरियपुढवीसु ।
अविरदमिस्सेऽसंखं संखासंखगुण सासणे देसे ।।६३७।।

सौधर्मादासहस्रारं ज्योतिषिवनभवनतिर्यक्पृथ्वीषु ।
अविरतमिश्रेऽसंख्यं संख्यासंख्यगुणं सासने देशे ।।६३७ ।।

टीका - सौधर्म-ईशान के ऊपर सनत्कुमार-माहेन्द्र से लेकर शतार-सहस्रार पर्यंत पांच युगल, ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी, तिर्यंच और सात नरक की पृथ्वी इन सोलह स्थान संबंधी अविरत में और मिश्र में असंख्यातगुणा अनुक्रम जानना और सासादन में संख्यातगुणा अनुक्रम जानना । तथा तिर्यंच संबंधी देशसंयत में असंख्यातगुणा अनुक्रम जानना, सो इस कथन को दिखाते हैं -

सनत्कुमार-माहेन्द्र में सासादन का जो भागहार कहा, उससे ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । संख्यात की सहनानी चार (४) का अंक है । इससे लांतव-कापिष्ट में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च इससे शुक्र-महाशुक्र में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च

इससे शतार–सहस्रार में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च इससे ज्योतिषियों में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का असंख्यातगुणा है । इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च इससे व्यंतरों में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च इससे भवनवासियों में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है।

पुनश्च इससे तिर्यंचों में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे तिर्यंच में ही देशसंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । सो देशसंयत में जो भागहार का प्रमाण है, वही प्रथम नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे दूसरी नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे तीसरी नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे चौथी नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे पांचवीं नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे छठवीं पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे सातवीं पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है ।

आगे आनतादि में तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं –

चरमधरासणहारा आणदसम्माण आरणप्पहुदिं ।
अंतिमगेवेज्जंतं सम्माणमसंखसंखगुणहारा ।।६३८।।

चरमधरासनहारादानतसमीचामारणप्रभृति ।
अंतिमग्रैवेयकांतं समीचामसंख्यसंख्यगुणहाराः ।।६३८।।

टीका - उस सप्तम पृथ्वी संबंधी सासादन के भागहार से आनत-प्राणत संबंधी अविरत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे आरण-अच्युत से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक दस स्थानों में असंयत का भागहार अनुक्रम से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा जानना। यहां संख्यात की सहनानी पांच का अंक है ।

तत्तो ताणुत्ताणं वामाणमणुद्दिसाण विजयादी ।
सम्माणं संखगुणो आणदमिस्से असंखगुणो ।।६३९।।

ततस्तेषामुक्तानां वामानामनुदिशानां विजयादि ।
समीचां संख्यगुण आनतमिश्रे संख्यगुणः ।।६३९।।

टीका - उस अंतिम ग्रैवेयक संबंधी असंयत के भागहार से आनत-प्राणत युगल से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक ग्यारह स्थानों में वाम अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव, उनका भागहार अनुक्रम से संख्यातगुणा संख्यातगुणा जानना । यहां संख्यात की सहनानी छह अंक है । पुनश्च उस अंतिम ग्रैवेयक संबंधी मिथ्यादृष्टि के भागहार से नौ अनुदिश विमान और विजयादिक चार *(अनुत्तर)* विमान इन दोनों स्थानों में असंयत का भागहार क्रम से संख्यातगुणा संख्यातगुणा जानना । यहां संख्यात की सहनानी सात का अंक है । पुनश्च विजयादिक के असंयत के भागहार से आनत-प्राणत संबंधी मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है ।

तत्तो संखेज्जगुणो सासणसम्माण होदि संखगुणो ।
उत्तट्ठाणे कमसो पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी ।।६४०।।

ततः संख्येयगुणः सासनसमीचां भवति संख्यगुणः ।
उक्तस्थाने क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचतुःसंदृष्टिः ।।६४०।।

टीका - उस आनत-प्राणत संबंधी मिश्र के भागहार से आरण-अच्युत से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक दस स्थानों में मिश्र गुणस्थान संबंधी भागहार अनुक्रम से संख्यातगुणा, संख्यातगुणा जानना । यहां संख्यात की सहनानी आठ का अंक है ।

nZü A{V_ Jd`H$ g~Yr {_l H$ ^mJhma g AmZV-àmUV g bH$a Zmd| Jd`H$ VH$ ½`mah ñWmZm| _| gmgmXZ H$m ^mJhma AZH$_ g g»`mVJUm g»`mVJUm OmZZmÿ& `hm g»`mV H$s ghZmZr Mma H$m AH$ h ÿ& ` H$h h` nmM ñWmZ CZ_| g»`mV H$s ghZmZr H$_ g nmM, Nh, gmV, AmR, Mma H$m AH$ OmZZm, Cg H$hV hr Am` h ÿ&

gJgJ Adhmaqh nëb ^{OX hd{V gJamgr ÿ&
gJgJJUn{SdÊU gJgJamgrg Ad{UX dm_m ÿ&&641&&

ñdH$ñdH$mdhma... në` ^º$ ^d{V ñdH$ame`... ÿ&
ñdH$ñdH$JUà{VnÞf ñdH$ñdH$am{ef AnZrVf dm_m... ÿ&&641&&

QrH$m - nhb H$hm hAm Om AnZm-AnZm ^mJhma, CZH$m ^mJ në` H$m XZna Om-Om à_mU AmVm h, CVZ-CVZ Ord dhm OmZZ ÿ& nZü AnZm-AnZm gmgmXZ, {_l, Ag`V Ama Xeg`V JUñWmZm| _| Om-Om à_mU Am`m, CZH$m OmS XZna Om-Om à_mU hm CVZm-CVZm à_mU AnZr-AnZr am{e H$ à_mU _| g KQmZna Om-Om Adef à_mU ah CVZ-CVZ Ord dhm {_Ï`mÑ{îQ OmZZ ÿ& dhm gm_mÝ`nZ {_Ï`mÑ{îQ qH${MV D$Z (H$_) ggmaram{e à_mU h ÿ& gm_mÝ`nZ XdJ{V _| qH${MV D$Z Xdam{e à_mU {_Ï`mÑ{îQ OmZZ ÿ& gmY_m{XH$ _| Om-Om Ordm| H$m à_mU H$hm h dhm {ÛVr`m{X JUñWmZ g~Yr à_mU KQmZ H$ {b` qH${MV H$_ H$aZna Om à_mU ah, CVZ-CVZ {_Ï`mÑ{îQ h ÿ& gm gmY_m{XH$ _| Ordm| H$m à_mU {H$VZm-{H$VZm h ? dh J{V_mJUm _| H$hm hr h ÿ& `hm ^r H$N H$hV h -

gmY_-BemZdmb KZmJb H$ VVr` dJ_b g OJV lUr H$m JUm H$aZna Om à_mU hm, CVZ hÿ& gZVH$_ma `Jb Am{X nmM `Jbm| _| H$_ g OJV lUr H$ ½`mahd|, Zmd|, gmVd|, nmMd|, MmW dJ_b H$m ^mJ OJV lUr H$m XZna Om-Om à_mU AmVm h, CVZ-CVZ hÿ& Á`m{Vfr nU{Æ à_mU àVamJb H$m ^mJ OJVàVa H$m XZna Om à_mU AmVm h, CVZ h ÿ& ì`Va g»`mV àVamJb H$m ^mJ OJVàVa H$m XZna Om à_mU AmVm h CVZ h & ^dZdmgr KZmJb H$ àW_ dJ_b g OJV lUr H$ JUm H$aZna Om à_mU AmVm h, CVZ h & {V`M qH${MV D$Z ggmar am{e à_mU hÿ& àW_ nÏdr _| ZmaH$s KZmJb H$ {ÛVr` dJ_b _| g gm{YH$ ~mahd|

^mJ H$m KQmH$a Cgg OJV I Ur H$m JUm H$aZna Om à_mU AmVm h, CVZ h¡& {ÛVr`m{X nÏdr _| H$_ g OJV I Ur H$ ~mahd, Xgd, AmRd, NRd, Vrga, Xga dJ_b H$m ^mJ OJV I Ur H$m XZna Om-Om à_mU AmVm h, CVZ-CVZ OmZZ¡& BZ g^r _| AÝ` JUñWmZdmbm H$m à_mU KQmZ H$ {b` qH${MV H$_ H$aZna {_Ï`mÑ{îQ Ordm H$m à_mU AmVm h ¡& nZü AmZV Am{X _| {_Ï`mÑ{îQ Ordm H$m à_mU `hm hr nhb H$hm h ¡& gdmW{g{Õ _| Ah{_ÝÐ gd Ag`V hr h¡& d Ðì`ór _Zî`Zr g {VJU `m {H$gr AmMm` H$ _V g gmV JU H$h h¡&

AmJ _Zî`J{V _| g»`m H$hV h -

VagH$mSr Xg ~mdÊU gmgU _UXìdm ¡&
{_ñgm {d ` VXXJUmgOXm gÎmH$m{Sg` ¡&&642&&

Ì`mXeH$mQçm Xe ÛmnMmeV gmgZ _Vì`m… ¡&
{_I m A{n M VX{ÛJUm Ag`Vm… gßVH$m{QeV_ ¡&&642&&

QrH$m - _Zî` Ord Xeg`V _| Vah H$m{S h ¡& gmgmXZ _| ~mdZ H$m{S OmZZ ¡& {_I _| CZg XJU EH$ gm Mma H$m{S OmZZ ¡& Ag`V _| gmV gm H$m{S OmZZ VWm à_Îmm{XH$ H$s g»`m nhb H$hr Wr, dhr OmZZm ¡& Eg JUñWmZm _| Ordm H$m à_mU H$hm ¡&

Or{dXa H$å_M` nÊU nmdm {Îm hm{X nÊU V ¡&
ghn`SrU Xìd nmd AghmU Xìd V ¡&&643&&

OrdVapñ_Z H$_M` nÊ` nmn{_{V ^d{V nÊ` V ¡&
e^àH$VrZm Ðì` nmn Ae^àH$VrZm Ðì` V ¡&&643&&

QrH$m - Ord nXmW g~Yr à{VnmXZ _| gm_mÝ`nZ JUñWmZm _| {_Ï`mÑ{îQ Ama gmgmXZ ` Vm nmn Ord h ¡& nZü {_I h, d nÊ`-nmnê$n {_I Ord h, Š`m{H$ `JnV gå`ŠËd Ama {_Ï`mËdê$n n[aU{_V h` h ¡& Ag`V Vm gå`ŠËd g g`º$ h ¡& Xeg`V gå`ŠËd Ama XedV g g`º$ h ¡& Ama à_Îmm{XH$ gå`ŠËd Ama gH$bdV g g`º$ h ¡& Bg{b` ` nÊ` Ord h ¡& Eg HhHa, BgH$ AZVa

अजीव पदार्थ संबंधी प्ररूपणा करते हैं ।

वहां कर्मचय अर्थात् कार्माणस्कंध, उसमें पुण्यपापरूप दो भेद हैं । इसलिये अजीव दो प्रकार के हैं । वहां साता वेदनीय, नरक बिना तीन आयु, शुभ नाम और उच्च गोत्र ये शुभ प्रकृति हैं । उनको द्रव्यपुण्य कहते हैं । पुनश्च घातिकर्म की सभी प्रकृति, असातावेदनीय, नरकायु, अशुभ नाम और नीच गोत्र ये अशुभ प्रकृति हैं । उनको द्रव्यपाप कहते हैं ।

आसवसंवरदव्वं समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं ।
तत्तो असंखगुणिदं उक्कस्सं होदि णियमेण ।।६४४।।

आस्रवसंवरद्रव्यम् समयप्रबद्धं तु निर्जराद्रव्यम् ।
ततोऽसंख्यगुणितमुत्कृष्टं भवति नियमेन ।।६४४।।

टीका – पुनश्च आस्रव द्रव्य और संवर द्रव्य समयप्रबद्धप्रमाण है; क्योंकि एक समय में आस्रव समयप्रबद्धप्रमाण पुद्गल परमाणुओं का ही होता है । तथा संवर होता है तो उतने ही कर्मों का आस्रव नहीं होता, इसलिये द्रव्यसंवर भी उतना ही कहा । पुनश्च उत्कृष्ट निर्जरा द्रव्य समयप्रबद्ध से असंख्यातगुणा नियम से जानना; क्योंकि गुणश्रेणी निर्जरा में उत्कृष्टपने एक समय में असंख्यात समयप्रबद्धों की निर्जरा करते हैं ।

बंधो समयपबद्धो किंचूणदिवड्ढमेत्तगुणहाणी ।
मोक्खो य होदि एवं सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा ।।६४५।।

बंधः समयप्रबद्धः किंचिदूनद्व्यर्धमात्रगुणहानिः ।
मोक्षश्च भवत्येवं श्रद्धातव्यास्तु तत्त्वार्थाः ।।६४५।।

टीका – बंध द्रव्य भी समयप्रबद्ध प्रमाण है; क्योंकि एक समय में समयप्रबद्ध प्रमाण कर्मपरमाणुओं का ही बंध होता है । पुनश्च मोक्ष द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है, क्योंकि अयोगी के चरम समय में डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण सत्ता पायी जाती है । उसी का मोक्ष होता है । इसप्रकार तत्त्वार्थ हैं वे श्रद्धान करने, इस तत्त्वार्थश्रद्धान ही का नाम सम्यक्त्व है ।

आगे सम्यक्त्व के भेद कहते हैं –

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ।
तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदू ।।६४६।।

क्षीणे दर्शनमोहे यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं भवति ।
तत्क्षायिकसम्यक्त्वं नित्यं कर्मक्षपणहेतुः ।।६४६।।

टीका – मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यक् मोहनीय और अनंतानुबंधी की चौकड़ी इन सात प्रकृतियों का करणलब्धिरूप परिणामों के बल से नाश होते हुये जो अति निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है । सो प्रतिपक्षी कर्मों के नाश से आत्मा का गुण प्रकट हुआ है इसलिये नित्य है । तथा प्रतिसमय गुणश्रेणी निर्जरा को कारण है, इसलिये कर्मक्षय का हेतु है ।

उक्तं च (कहा ही है) –

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि एक्केव तदियतुरियभवे ।
णादिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेस सम्मं च ।।

दर्शनमोह का क्षय होनेपर उसी भव में अथवा देवायु का बंध होनेपर या पहले मिथ्यात्व दशा में नरकायु का बंध होनेपर तीसरे भव में अथवा पहले मिथ्यात्व दशा में मनुष्य, तिर्यंच आयु का बंध हुआ हो तो भोगभूमि अपेक्षा चौथे भव में सिद्धपद को प्राप्त होता है, चौथे भव को उल्लंघता नहीं । पुनश्च अन्य सम्यक्त्ववत् इस क्षायिक सम्यक्त्व का विनाश भी नहीं होता, इसलिये इसे नित्य कहा है । सादि अक्षयानंत है अर्थात् आदि सहित अविनाशी अंत रहित है, यह अर्थ जानना ।

इसी अर्थ को कहते हैं –

वयणेहिं वि हेदूहिं वि इंदियभयआणएहिं रूवेहिं ।
बीभच्छजुगंछाहिं य तेलोक्केण वि ण चालेज्जो ।।६४७।।

वचनैरपि हेतुभिरपि इंद्रियभयानीतैः रूपैः ।
बीभत्स्यजुगुप्साभिश्च त्रैलोक्येनापि न चाल्यः ।।६४७।।

टीका – श्रद्धान नष्ट होने के कारणभूत ऐसे कुत्सित वचनों से या कुत्सित

हेतु दृष्टांतों से या इन्द्रियों को भयकारी ऐसे विकाररूप अनेक भेष आकारों से या ग्लानि के कारणभूत ऐसी वस्तु से उत्पन्न जुगुप्सा से क्षायिक सम्यक्त्व चलायमान नहीं होता। अधिक क्या कहे तीन लोक मिलकर क्षायिक सम्यक्त्व को चलायमान करना चाहे तो भी क्षायिक सम्यक्त्व को चलायमान करने में समर्थ नहीं होते ।

वह क्षायिक सम्यक्त्व किसके होता है ? वह कहते हैं –

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ।।६४८।।

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि ।
मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्वत्र ।।६४८।।

टीका – दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ तो कर्मभूमि में उत्पन्न मनुष्य ही के केवली के पादमूल में ही होता है और निष्ठापक सर्वत्र चारों गतियों में होते हैं।

भावार्थ – जो दर्शनमोह का क्षय होने का विधान है, उसका प्रारम्भ तो केवली या श्रुतकेवली के निकट कर्मभूमिया मनुष्य ही करता है । यदि वह विधान होते हुये मरण हो जाय तो जहां सम्पूर्ण दर्शनमोह के नाश का कार्य होकर समाप्त हो जाता है वहां उसको निष्ठापक कहते हैं; वह चारों गतियों में होता है ।

आगे वेदकसम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं –

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चलमलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ।।६४९।।

दर्शनमोहोदयादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानम् ।
चलमलिनमगाढं तद् वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ।।६४९।।

टीका – दर्शनमोहनीय का भेद जो सम्यक्त्वमोहनीय, उसके उदय से जो तत्त्वार्थश्रद्धान चल वा मल वा अगाढ़ होता है, वह वेदकसम्यक्त्व है, ऐसा तू जान ! चल, मलिन, अगाढ़ का लक्षण पहले गुणस्थानप्ररूपणा में कहा है *(गाथा २५ की टीका में)* ।

आगे उपशमसम्यक्त्व का स्वरूप और उसी की सामग्री का विशेष तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं –

दंसणमोहउवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं ।।६५०।।

दर्शनमोहोपशमादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानम् ।
उपशमसम्यक्त्वमिदं प्रसन्नमलपंकतोयसमम् ।।६५०।।

टीका – अनंतानुबंधी की चौकड़ी और दर्शनमोह की तीन इन सात प्रकृतियों के उदय का अभाव है लक्षण जिसका ऐसा प्रशस्त उपशम होने से, जैसे कतकफलादि से मल कर्दम के नीचे बैठने से जल प्रसन्न (स्वच्छ) होता है, वैसे जो तत्त्वार्थश्रद्धान उपजता है, वह उपशम नामक सम्यक्त्व है ।

खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धीय ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्ते ।।६५१।।

क्षायोपशमिकविशुद्धि देशना प्रायोग्यकरणलब्धी च ।
चतस्रोऽपि सामान्यः करणं पुनर्भवति सम्यक्त्वे ।।६५१।।

टीका – सम्यक्त्व के पहले जैसे कर्मों का क्षयोपशम चाहिये वैसा होना वह क्षयोपशमलब्धि । जैसी विशुद्धता चाहिये वैसी होनी वह विशुद्धिलब्धि । जैसा उपदेश चाहिये वैसा प्राप्त होना वह देशनालब्धि । पंचेन्द्रियादिरूप योग्यता जैसी चाहिये वैसी होनी वह प्रायोग्यलब्धि । तथा अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणरूप परिणामों का होना वह करणलब्धि जाननी ।

वहां चार लब्धि तो सामान्य हैं; भव्य-अभव्य सब के होती हैं । करणलब्धि है, वह भव्य को ही होती है । वह भी सम्यक्त्व और चारित्र के ग्रहण में ही होती है ।

भावार्थ – चार लब्धि तो संसार में अनेक बार होती हैं, परंतु करणलब्धि की प्राप्ति होनेपर सम्यक्त्व वा चारित्र अवश्य होता है ।

आगे उपशमसम्यक्त्व के ग्रहण को योग्य जो जीव, उसका स्वरूप कहते हैं -

चदुगदिभव्वो सण्णी पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो ।
जागारो सल्लेस्सो सलद्धिगो सम्ममुवगमई ।।६५२।।

MVJ{V^ì`… gkr n`mßVíM eÕH$íM gmH$ma… Ÿ&
OmJêH… gëbí`… gbpãYH$… gå`ŠËd_nJÀN{V Ÿ&&652&&

QrH$m - Om Ord Mma J{V`m| _| g {H$gr EH$ J{V _| àmßV Egm ^ì` hm, gkr hm, n`mßV hm, _XH$fm`ê$n n[aU_Vm hAm {deÕ hm, ñË`mZJÕçm{XH$ VrZ {ZÐm g a{hV hmZ g OmJV hm, Om gmH$ma kmZmn`mJr hm, ^m{dV VrZ e^ bí`mAm| _| g {H$gr EH$ bí`m H$m YmaH$ hm, H$aUbpãYê$n n[aU_m hm, Egm Ord `Wmg^d gå`ŠËd H$m àmßV hmVm h Ÿ&

MÎmm[a {d I ÎmmB AmCJ~YU hmB gå_Îm Ÿ&
AUdX_hìdXmB U bhB XdCJ _mÎm Ÿ&&653&&

MËdm`{n j Ìm{U Am`îH$~YZ ^d{V gå`ŠËd_ Ÿ&
AUdV_hmdVm{Z Z b^V Xdm`îH$ _ŠËdm Ÿ&&653&&

QrH$m - Mmam| Am` _| g {H$gr ^r na^d H$s Am` H$m ~Y {H$`m hm, Vm ^r Cg ~Õm` Ord H$ gå`ŠËd CnOVm h, `hm H$mB Xmf Zht h Ÿ& AUdV Ama _hmdV {OgH$ nhb Xdm` H$m ~Y hAm hm Cgr H$m hmVm h *(AWdm A~Õm` H$ hmVm h)* Ÿ& `{X nhb ZmaH$, {V`M, _Zî`m` H$m ~Y {_Ï`mËd _| hAm hm Vm nümV AUdV, _hmdV Zht hmV Ÿ& `h {Z`_ h Ÿ&

U ` {_ÀNÎm nÎmm gå_ÎmmXm ` Om ` n[ad{SXm Ÿ&
gm gmgUm {Îm U`m nM_^mdU gOÎmm Ÿ&&654&&

Z M {_Ï`mËd àmßV… gå`ŠËdVíM `íM n[an{VV… Ÿ&
g gmgZ B{V k`… nM_^mdZ g`º$… Ÿ&&654&&

QrH$m - Om Ord (Amne{_H$) gå`ŠËd g {Ja J`m Ama {_Ï`mËd H$m O~ VH$ àmßV Zht hAm, V~ VH$ gmgmXZ h, Egm OmZZm Ÿ& gm XeZ_mh hr H$s Anjm nmMd AWmV nm[aUm{_H$ ^md g `º$ h Š`m{H$ Mm[aÌ_mh H$s Anjm AZVmZ~Yr H$ CX` g gmgmXZ hmVm h Bg{b` `hm AmX{`H$ ^md h Ÿ& `h gmgmXZ OXr hr Om{V H$ lÕmZê$n gå`ŠËd_mJUm H$m ^X OmZZm Ÿ&

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।
विरयाविरयेण समो सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो ।।६५५।।

श्रद्धानाश्रद्धानं यस्य च जीवस्य भवति तत्त्वेषु ।
विरताविरतेन समः सम्यग्मिथ्या इति ज्ञातव्यः ।।६५५।।

टीका – जिस जीव के जीवादि पदार्थों में श्रद्धान और अश्रद्धान एक काल में होता है, जैसे देशसंयत के संयम और असंयम एक काल में होता है, वैसे होता है, वह जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि है ऐसा जानना । यह सम्यक्त्वमार्गणा का मिश्र नामक भेद है ।

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ।।६५६।।

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति ।
श्रद्दधाति असद्भावं उपदिष्टं वा अनुपदिष्टम् ।।६५६।।

टीका – मिथ्यादृष्टि जीव जिनेन्द्र द्वारा उपदेशित आप्त, आगम और पदार्थ का श्रद्धान नहीं करता परंतु कुदेवादिक द्वारा उपदेशित या अनुपदेशित झूठे आप्त, आगम, पदार्थ, उनका श्रद्धान करता है । यह सम्यक्त्वमार्गणा का मिथ्यात्व नामक भेद कहा। इसतरह सम्यक्त्वमार्गणा के छह भेद कहे । उपशम और क्षायिक सम्यक्त्व का विशेष विधान लब्धिसार ग्रंथ में कहा है । उसके अनुसार यहां भाषाटीका में आगे कुछ लिखेंगे, वहां जानना ।

आगे सम्यक्त्वमार्गणा में जीवों की संख्या तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं –

वासपुधत्ते खइया संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे ।
तो संखपल्लठिदिये केवडिया एवमणुपादे ।।६५७।।

वर्षपृथक्त्वे क्षायिकाः संख्येया यदि भवंति सौधर्मे ।
तर्हि संख्यपल्यस्थितिके कति एवमनुपाते ।।६५७।।

टीका – बहुत से क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव कल्पवासी देव होते हैं । सौधर्म-ईशान में कल्पवासी देव बहुत हैं, इसलिये ऐसा त्रैराशिक करना कि यदि पृथक्त्व वर्ष

में क्षायिक सम्यग्दृष्टि सौधर्म-ईशान में संख्यात उपजते हैं तो संख्यात पल्य की स्थिति में कितने उपजेंगे ? यहां प्रमाणराशि पृथक्त्व वर्ष प्रमाण काल, फलराशि संख्यात जीव, इच्छाराशि संख्यात पल्यप्रमाण काल; सो फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर जो लब्धराशि आयी, उसे कहते हैं -

संखावलिहिदपल्ला खइया तत्तो य वेदमुवसमया ।
आवलिअसंखगुणिदा असंखगुणहीणया कमसो ।।६५८।

संख्यावलिहितपल्याः क्षायिकास्ततश्च वेदमुपशमकाः ।
आवल्यसंख्यगुणिता असंख्यगुणहीनकाः क्रमशः ।।६५८।।

टीका - सो लब्धराशि का प्रमाण संख्यात आवली का भाग पल्य को देनेपर जो प्रमाण हो, उतना आया । सो उतने ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि जानने । पुनश्च इनको आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने वेदकसम्यग्दृष्टि जीव जानने । तथा क्षायिक जीवों के प्रमाण ही से असंख्यातगुणा हीन उपशमसम्यग्दृष्टि जीव जानने ।

पल्लासंखेज्जदिमा सासाणमिच्छा य संखगुणिदा हु ।
मिस्सा तेहिं विहीणो संसारी वामपरिमाणं ।।६५९।।

पल्यासंख्याताः सासनमिथ्याश्च संख्यगुणिता हि ।
मिश्रास्तैर्विहीनः संसारी वामपरिमाणम् ।।६५९।।

टीका - पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण सासादन वे ही मिथ्यात्वी सामान्य हैं (सासनमिथ्याः), उनके प्रमाण से संख्यातगुणे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं । पुनश्च इन पांच सम्यक्त्व संयुक्त जीवों के मिलाये हुये प्रमाण को संसारीराशि में से घटानेपर जो अवशेष रहे उतना वाम अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण है । *(यहां सम्यक्त्वमार्गणा के छह भेद हैं उनमें से पांच को घटानेपर छठवां भेद मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण आता है)* ।

अब यहां नौ पदार्थों का प्रमाण कहते हैं -

जीवद्रव्य तो द्विरूपवर्गधारा में कहे हुये अपने प्रमाणवाला है । अजीव में पुद्गलद्रव्य जीवराशि से अनंतगुणे है । धर्मद्रव्य एक है । अधर्मद्रव्य एक है । आकाशद्रव्य एक है । कालद्रव्य जगत्श्रेणी का घन जो लोक, उसप्रमाण हैं । सो पुद्गल के प्रमाण में धर्म, अधर्म, आकाश, काल का प्रमाण मिलानेपर अजीव पदार्थ का प्रमाण होता है ।

पुनश्च असंयत और देशसंयत का प्रमाण मिलाकर उनमें प्रमत्तादिकों का प्रमाण संख्यात मिलानेपर जो प्रमाण होता है, उतने पुण्यजीव हैं । पुनश्च किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्म परमाणुओं की सत्ता है उसके संख्यातवें भागमात्र शुभप्रकृतिरूप अजीवपुण्य हैं । पुनश्च मिश्र की अपेक्षा से कुछ अधिक पुण्यजीवों के प्रमाण को संसारी राशि में से घटानेपर जो प्रमाण रहे, उतने पापजीव हैं । पुनश्च डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध को संख्यात का भाग दीजिये, वहां एक भाग बिना अवशेष भाग प्रमाण अशुभ प्रकृतिरूप अजीवपाप है । आस्रवपदार्थ समयप्रबद्धप्रमाण है । संवरपदार्थ समयप्रबद्धप्रमाण है । निर्जराद्रव्य गुणश्रेणीनिर्जरा में उत्कृष्टपने जितनी निर्जरा होती है, उसप्रमाण है । बंधपदार्थ समयप्रबद्धप्रमाण है । मोक्षद्रव्य डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा नामक सत्रहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१७।।

अठारहवां अधिकार : संज्ञीमार्गणा प्ररूपणा

।। मंगलाचरण ।।

अरि रजविघ्न विनाशकर, अमित चतुष्टय थान ।
शत इंद्रनि करि पूज्य पद, द्यो श्री अर भगवान ।।

आगे संज्ञी मार्गणा कहते हैं –

णोइंदियआवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा ।
सा जस्स सो दु सण्णी इदरो सेसिंदिअवबोहो ।।६६०।।

नोइंद्रियावरणक्षयोपशमस्तज्जबोधनं संज्ञा ।
सा यस्य स तु संज्ञी इतरः शेषेंद्रियावबोधः ।।६६०।।

टीका – नोइन्द्रिय अर्थात् मन के आवरण का जो क्षयोपशम, उससे उत्पन्न हुआ जो बोधन अर्थात् ज्ञान उसको संज्ञा कहते हैं । वह संज्ञा जिसके प्राप्त हो उसको संज्ञी कहते हैं । मन-ज्ञान से रहित अवशेष यथासंभव इन्द्रियों के ज्ञान से युक्त जो जीव, वे असंज्ञी हैं ।

सिक्खाकिरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंबेण ।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीओ असण्णी दु ।।६६१।।

शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही मनोवलंबेन ।
यो जीवः स संज्ञी तद्विपरीतोऽसंज्ञी तु ।।६६१।।

टीका – हित-अहित के करने-त्यागनेरूप शिक्षा, इच्छा से हाथ पैर आदि चलानेरूप क्रिया, चामठी (बेंत) आदि से उपदेशित वधविधानादिक वह उपदेश, श्लोकादिक का पाठ करना वह आलाप, इनका ग्रहण करनेवाला जो मन, उसके अवलंबन से क्रम से मनुष्य, बैल, हाथी और तोता इत्यादि जीवों का संज्ञी नाम है । तथा इस लक्षण से उलटे लक्षणवाला जीव, उसका असंज्ञी नाम जानना ।

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खदि णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीदो ।।६६२।।

मीमांसति यः पूर्वं कार्यमकार्यं च तत्त्वमितरच्च ।
शिक्षते नाम्ना एति च समनाः अमनाश्च विपरीतः ।।६६२।।

टीका – जो पहले कार्य-अकार्य का विचार करे, तत्त्व-अतत्त्व को सीखे, नाम से बुलानेपर आये, वह जीव मनसहित समनस्क, संज्ञी जानना । इस लक्षण से उलटे लक्षण का जो धारक हो, वह जीव मनरहित अमनस्क असंज्ञी जानना ।

यहां जीवों की संख्या कहते हैं –

देवेहिं सादिरेगो रासी सण्णीण होदि परिमाणं ।
तेणूणो संसारी सव्वेसिमसण्णिजीवाणं ।।६६३।।

देवैः सातिरेको राशिः संज्ञिनां भवति परिमाणम् ।
तेनोनः संसारी सर्वेषामसंज्ञिजीवानाम् ।।६६३।।

टीका – चार प्रकार के देवों का जो प्रमाण है, उससे कुछ अधिक संज्ञी जीवों का प्रमाण है । संज्ञी जीवों में देव बहुत हैं । उनमें नारक, मनुष्य, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिलानेपर संज्ञी जीवों का प्रमाण होता है । इस प्रमाण को संसारी जीवों के प्रमाण में से घटानेपर अवशेष सर्व असंज्ञी जीवों का प्रमाण होता है ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से संज्ञीमार्गणा प्ररूपणा नामक अठारहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१८।।